181 PC94.24 Thakur, Ravindranath.

Geetanjali / Ravindranath Thakur, tr. by Suryanarayan Chaube. — Allahabad: Indian press, 1942.

vii, 103 p., 18cm.

गीतांजलि



अनुवादक—सूर्यनारायण चौबे

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

इंडियन प्रेस, लिमिटेड
प्रयाग

Printed and Published by K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd., Allahabad

प्राथमिक शब्दों की तालिका

गीत-संख्या

गीत-संख्या

म

गीत-संख्या

—

१

तूने मुझे अनन्त बना डाला, यह भी तेरी मौज ही है। इस भंगुर पात्र को तू बारम्बार खाली करके सदैव उसे नये जीवन से भरता रहता है!

बाँस की इस नन्ही सी बाँसुरी को तूने न जाने कितनी पहाड़ियों और घाटियों की सैर कराई है और इसमें से न जाने कितनी नित्य नई रागिनियाँ निकाली हैं।

तेरे हाथों का अमर-स्पर्श होते ही मेरा यह नन्हा सा हृदय अपने आनन्द की सीमा का अतिक्रमण कर जाता है और फिर उसमें से अकथनीय उद्गार निकलने लगते हैं।

तेरे अगणित उपहार अहर्निश केवल मेरे इन अत्यन्त क्षुद्र हाथों में ही तो आते हैं! युग पर युग व्यतीत हो जाते हैं, तू निरन्तर दिये जाता है; परन्तु फिर भी भरने के लिए इनमें स्थान खाली ही रहता है!

२

तू जब मुझे गाने का आदेश देता है तो मारे गर्व के मेरा हृदय फूला नहीं समाता, मेरे नेत्र सजल हो जाते हैं और मैं एकटक तेरी ओर निहारने लगता हूँ।

मेरे जीवन की सारी परुषता और विषमता एक मधुर लय में परिणत हो जाती है और मेरी समस्त भक्ति, साधना और आराधना एक समुद्र-पार-गामी पक्षी की भाँति पुलकित होकर अपने पंख फैला देती है।

मैं जानता हूँ कि मेरा गाना तुझे प्रिय है और मैं यह भी जानता हूँ कि मैं एक गायक के ही रूप में तेरे सम्मुख आने पाता हूँ।

तेरे जिन चरणों तक पहुँचने की मैं कभी कामना भी न कर सकता था, उन्हें मैं सहज ही अपने गीतों के सुविस्तृत पंखों से स्पर्श कर पाता हूँ।

अपने सङ्गीत के आनन्द से उन्मत्त होकर मैं अपने आपको भूल जाता हूँ और तुझे—अपने स्वामी को—सखा कहकर पुकारने लगता हूँ!

३

प्रभो, तू न जाने कैसे गाता है कि मैं आश्चर्य से अवाक् होकर उसे निरन्तर सुनता रहता हूँ।

तेरे सङ्गीत का आलोक इस संसार को उद्भासित कर देता है। तेरे सङ्गीत की प्राणवायु दिग्दिगन्त में प्रवाहित होती रहती है। तेरे सङ्गीत की पवित्र धारा समस्त दुरूह व्याघातों को काटती हुई आगे ही बढ़ती जाती है।

मेरा हृदय तेरे स्वर में स्वर मिलाकर गाना चाहता है परन्तु अनेक चेष्टा करने पर भी स्वर निकलते नहीं। मैं बोलना चाहता हूँ, परन्तु वाणी सङ्गीतमय नहीं हो पाती और मैं हारकर रो देता हूँ। आह! मेरे स्वामी, तूने तो मेरे हृदय को अपने सङ्गीत के अनन्त पाशों में जकड़ रक्खा है।

४

मेरे जीवन-प्राण ! यह जानकर कि तेरा सजीव-स्पर्श मेरे समस्त अङ्गों से हो रहा है, मैं अपने शरीर को सदा पवित्र बनाये रखने का प्रयत्न करूँगा।

यह जानकर कि तू वह सत्य है जिसने कि मेरे मन में विवेक की ज्योति प्रदीप्त की है, मैं सदैव अपने विचारों से असत्य को दूर रक्खूँगा।

यह जानकर कि तू मेरे हृदय के अन्तस्तल में विराजमान है, मैं सदैव समस्त विकारों को अपने हृदय से दूर रखने का प्रयत्न करूँगा और अपने प्रेम को निरन्तर विकसित रक्खूँगा।

यह जानकर कि यह तेरी ही शक्ति है जो मुझे कार्य करने के लिए समर्थ बनाती है, मैं तेरी सत्ता को अपने कार्यों द्वारा प्रकट करने का प्रयत्न करूँगा।

५

बस, क्षण भर के लिए ही तू मुझे अपने पास बैठ लेने दे ! जो कार्य मुझे करने हैं, उन्हें मैं फिर कर लूँगा ।

तेरी दृष्टि से दूर रहने पर मेरे हृदय को न तो विश्राम मिलता है और न शान्ति; प्रत्युत मेरा कार्य परिश्रम के अपार-सागर में और भी कष्टप्रद हो जाता है ।

आज वसन्त अपनी उच्छ्वासों और मर्मर-ध्वनि के साथ मेरे गवाक्ष में आया है और कुसुमित कुञ्जों के प्राङ्गण में भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं ।

यही तो अवसर है कि मैं शान्तिपूर्वक तेरे सम्मुख बैठ जाऊँ और अपने इस एकान्त एवं प्रचुर अवकाश में आत्म-समर्पण के गीत गाऊँ !

६

इस नन्हे से पुष्प को तोड़कर तू इसे अपने हाथों में ले ले। विलम्ब न कर, अन्यथा मुझे डर है कि कहीं यह कुम्हलाकर धूल में न गिर पड़े।

इसे तू चाहे अपनी माला में स्थान न दे पर तोड़ अवश्य ले और तोड़ने की उस पीड़ा द्वारा ही उसे अपने स्पर्श का गौरव प्रदान कर। मुझे भय है कि कहीं मेरे अनजान में ही दिवस न व्यतीत हो जाय और भेंट चढ़ाने का समय निकल जाय।

सम्भव है कि इसका रङ्ग फीका और इसकी गन्ध हल्की हो, परन्तु मेरी याचना है कि मुरझा जाने के पूर्व ही तू उसे तोड़कर उसका उपयोग अपनी सेवा में कर ले।

७

मेरे गीत ने अपने अलङ्कारों को उतार फेंका है; उसे बनाव-शृङ्गार का किञ्चित् भी ध्यान नहीं है; क्योंकि आभूषण तेरे और मेरे संयोग में बाधक होकर बीच में आ जायँगे और उनकी झङ्कारों में तेरे मृदुल स्वर लीन हो जायँगे।

तेरे सम्मुख मेरा कवि-दर्प लाज से मर जाता है। कवि-शिरोमणे! मैं तेरे शरणागत हूँ। बस, अब तू मुझे अपने इस जीवन को नरकुल की एक बाँसुरी की भाँति सीधा और सरल बना लेने दे जिससे तू उसमें सरलता-पूर्वक स्वर भर सके।

८

जो बालक राजसी वस्त्रों से सुसज्जित रहता है और जिसके गले में मणि-जटित मालाएँ पड़ी रहती हैं, उसके खेल का सारा आनन्द नष्ट हो जाता है; उसके वस्त्रालङ्कार उसकी स्वच्छन्दता को प्रत्येक पद पर बाधा पहुँचाते हैं।

इस भय से कि कहीं उनमें सिकुड़न न आ जाय या वे धूलि में मैले न हो जायँ, वह अपने आपको सबसे अलग रखने का प्रयत्न करता है; यहाँ तक कि चलने-फिरने से भी डरता है।

तेरा यह बनाव-चुनाव का बन्धन यदि किसी को पृथ्वी की स्वास्थ्यप्रद धूलि से अलग रक्खे अथवा साधारण मानव-जीवन के विराट् समारोह के प्रवेशाधिकार से किसी को वञ्चित रक्खे तो फिर इससे लाभ ही क्या है, माँ?

९

रे मूर्ख, अपने ही कन्धों पर चढ़कर चलने का प्रयास ! भिक्षुक, अपने ही द्वार पर भीख माँगना !

जो सब वहन करने में समर्थ है, उसके हाथों पर अपना सारा भार छोड़कर तू निश्चिन्त क्यों नहीं हो जाता जिससे कि तुझे फिर कभी पश्चात्ताप न करना पड़े ?

तेरी वासना जिस दीपक को भी अपनी श्वास द्वारा स्पर्श करती है, उसी को तुरन्त बुझा देती है। वह अपवित्र है ! उसके अशुद्ध हाथों से दी हुई वस्तु तू स्वीकार न कर ! पावन-प्रेम द्वारा तुझे जो कुछ भी मिले, उसे ही ग्रहण कर।

१०

तेरा पादाश्रय वही तो है जहाँ दीनातिदीन, नीचातिनीच और नगण्यतम जनों के निवास-स्थल में तेरे चरण-कमल विराजमान हैं !

जब मैं तुझे नमस्कार करता हूँ तो मेरा नमन उस निचाई तक नहीं पहुँच पाता जहाँ दीनातिदीन, नीचातिनीच और नगण्यतम जनों के बीच तेरे चरणकमल विराजमान हैं !

अभिमान की तो वहाँ गति ही नहीं जहाँ दीनातिदीन, नीचातिनीच और नगण्यतम जनों के बीच तू दीन-वेष में विचरण करता है !

मेरा मन भी वहाँ कदापि नहीं पहुँच सकता जहाँ तू दीनातिदीन, नीचातिनीच और नगण्यतम जनों के बीच असहायों के साथ रहता है !

११

अरे, यह भजन, कीर्त्तन और माला जपना छोड़ ! किवाड़ बन्द करके मन्दिर की निर्जन अँधेरी कोठरी में बैठा तू किसकी पूजा कर रहा है ? अपनी आँख भी तो खोल-कर देख, तेरा भगवान् तो तेरे सामने है ही नहीं !

वह तो वहाँ है, जहाँ किसान उस कड़ी भूमि को जोत रहा है और जहाँ सड़क बनानेवाला पत्थर के टुकड़े तोड़ रहा है। वर्षा में और धूप में वह सदैव उनके साथ रहता है और उसके वस्त्र धूलि-धूसरित रहते हैं। अस्तु, अपना यह पवित्र परिधान तू उतार फेंक और उसी की भाँति तू भी धूलि-भरी भूमि पर आ जा !

मुक्ति ? अरे, मुक्ति है कहाँ ? हमारे प्रभु ने तो स्वयं अपने आपको प्रसन्नता-पूर्वक सृष्टि के बन्धनों में बाँध रक्खा है और हमारे साथ सदा के लिए बँध गया है।

तो निकल आ अपनी समाधि से और दूर हटा यह सब पुष्प-धूप-दीपादि का आडम्बर ! यदि प्रभु का अनुकरण करने में वस्त्र फट ही जाते हैं अथवा मलिन हो जाते हैं तो कौन-सी हानि है ? कर्म्मयोग में प्रयुक्त होकर, उसके साथ पसीना बहाकर और उसका साथ देकर तू उससे मिल क्यों न जा !!

१२

मेरी यात्रा अत्यन्त लम्बी है और उसमें समय भी अत्यधिक लगता है।

मैं प्रकाश की सर्व-प्रथम किरण के रथ पर यात्रा के लिए निकला और लोक-लोकान्तरों में भ्रमित होता हुआ अनेक ग्रहों और नक्षत्रों पर अपने पद-चिह्न छोड़ आया।

परन्तु सबसे अधिक दूरी का मार्ग ही तेरे निकटतम पहुँचता है और जिस साधना के द्वारा कीर्त्तन अत्यन्त निरा-डम्बरता के साथ किया जा सके, वही अत्यन्त दुरूह है।

यात्री को अपने ही द्वार तक पहुँचने के लिए प्रत्येक पराये का द्वार खटखटाना पड़ता है और अन्त में मन्दिर के अन्तस्तल तक पहुँचने के लिए उसे समस्त बाह्य-लोकों में भटकना पड़ता है।

नेत्र बन्द करके केवल इतना भी कहने के पूर्व कि "तू यहाँ है", मेरी दृष्टि को बहुत कुछ इधर-उधर भटकना पड़ा।

"तू कहाँ है"—की जिज्ञासा और पुकार आँसुओं की सहस्रों धाराओं के रूप में बह निकलती है और संसार को "मैं हूँ!" के आश्वासन के प्रवाह से आप्लावित कर देती है।

१३

जो गीत मैं गाने आया था, उसे आज तक न गा पाया !

मैंने अपना समस्त जीवन बाजे के तारों को उतारने-चढ़ाने में ही बिता दिया !

न तो ताल ठीक हुए और न बोल ही यथोचित रूप से बैठ पाये—रह गई बस हृदय में अभिलाषा की कसक !

कली नहीं खिली; केवल समीर उसके समीप सिसकियाँ ले रहा है।

मुझे उसके रूप की झलक भी नहीं मिली है और न मैंने उसकी वाणी ही सुन पाई है; मैंने तो अपने घर के सामने के मार्ग पर से आती हुई उसकी कोमल पग-ध्वनि मात्र ही सुनी है !

जीवन-दिवस पर्यन्त मैं उसके लिए आसन बिछाता ही रह गया; परन्तु दीपक तो जला ही नहीं ! मैं उन्हें अपने घर आमन्त्रित भी करूँ तो कैसे ?

मैं उससे मिलने की आशा ही में जी रहा हूँ; परन्तु अब तक वह हो न पाया !

१४

मेरी अभिलाषाएँ बहुत हैं और उनके लिए मेरा क्रन्दन भी अत्यन्त करुणा-जनक है; परन्तु तूने अपनी कठोर अस्वीकृतियों द्वारा सदैव मेरी रक्षा की है और तेरी यही प्रबल अनुकम्पा मेरे जीवन में पूर्ण रूप से व्याप्त हो गई है!

वासनाधिक्य के अवगुणों से मेरी रक्षा करता हुआ तू दिन-प्रतिदिन मुझे अपने उन साधारण परन्तु महान् उपहारों के योग्य बनाता जा रहा है, जो तूने मुझे अयाचित-रूप से दे रक्खे हैं जैसे आकाश और प्रकाश; शरीर, जीवन और मन!

कभी तो मैं आलस्य में पड़कर पिछड़ जाता हूँ और कभी उद्बुद्ध होकर अपने लक्ष्य की खोज में दौड़ पड़ता हूँ; पर तू निष्ठुरता-पूर्वक अपने आप को मुझसे छिपा लेता है!

दुर्बल और अनिश्चित कामना के अवगुणों से बचाता हुआ और मेरी याचनाओं को अस्वीकृत करता तू दिन-प्रतिदिन मुझे अपनी पूर्ण स्वीकृति का पात्र बनाता जा रहा है!

१५

मैं तो तुझे यहाँ गीत सुनाने आया हूँ ! तेरे इस विशाल भवन के एक कोने में मुझे स्थान मिला है।

तेरी सृष्टि में मुझे और कोई काम नहीं करना है और मेरा निरर्थक जीवन केवल निष्प्रयोजन तानें ही लगा सकता है !

अर्द्धरात्रि के अन्धकार-पूर्ण मन्दिर में जब तेरी मूक-उपासना का घंटा बजे तब, मेरे प्रभो, मुझे अपने सामने खड़े होकर गाने की आज्ञा देना !

जब प्रभात-कालीन समीर प्रवाहित हो रहा हो और सुनहरी वीणा मिलाई जाकर बजाये जाने के लिए प्रस्तुत हो, उस समय मेरा आह्वान करके मुझे सम्मानित करना !

१६

संसार के इस आनन्दोत्सव में सम्मिलित होने का आमन्त्रण पाकर मेरा जीवन धन्य हो गया! मेरी आँखों ने उसे देखा और कानों ने सुना।

इस उत्सव के अवसर पर मुझे वीणावादन का भार दिया गया था और उस कार्य को मैंने यथासामर्थ्य किया भी।

अब मैं यह पूछता हूँ कि भीतर आकर तेरे मुखारविन्द का दर्शन करने और अपनी मौन वन्दना अर्पित करने का मेरा समय अभी आया कि नहीं?

१७

मैं केवल प्रेम की प्रतीक्षा में हूँ कि अन्त में उसके हाथों आत्म-समर्पण कर दूँ! इसी से इतना विलम्ब हो गया और मुझसे इस प्रकार की त्रुटियाँ बन पड़ीं।

लोग मुझे नियमों और विधानों के बन्धन में जकड़ने के लिए आते हैं; पर मैं सदा उन्हें टाल दिया करता हूँ क्योंकि मैं तो केवल प्रेम की प्रतीक्षा में हूँ कि अन्त में उसके हाथों आत्म-समर्पण कर दूँ!

लोग मुझ पर असावधानी का लाञ्छन आरोपित करते हैं और इसमें सन्देह भी नहीं कि उनका यह आरोप ठीक है।

हाट का दिन बीत गया और कामकाजियों का कार्य भी समाप्त हो गया। जो लोग मुझे बुलाने की व्यर्थ चेष्टा करने आये थे वे रुष्ट होकर लौट गये। मैं तो केवल प्रेम की प्रतीक्षा में हूँ कि अन्त में उसके हाथों आत्म-समर्पण कर दूँ!

१८

मेघ-मालाएँ उमड़ी चली आ रही हैं और अन्धकार होता जा रहा है। आह, मेरे प्यारे, तू मुझे बाहर द्वार पर अकेला खड़ा रखकर क्यों मुझसे प्रतीक्षा करा रहा है ?

मध्याह्न की कार्य-व्यस्त घड़ियों में तो मैं जन-समूह-सङ्कुलित रहता हूँ, परन्तु इस घनाच्छादित एकान्त दिवस में मुझे केवल तेरी ही आशा है !

यदि अपने दर्शन न देकर तू मुझे सर्वथा बिलग रक्खेगा तो भला मैं वर्षा की यह दुर्वह घड़ियाँ कैसे काटूँगा ?

मैं आकाश पर छाई हुई उस दूरस्थ कालिमा की ओर अनिमेष दृष्टि से देखता रह जाता हूँ और मेरा हृदय अस्थिर पवन के साथ भटकता फिरता है !

१९

यदि तू मुझसे न बोलेगा तो मैं तेरे मौन से ही अपने हृदय को पूरित कर लूँगा और इस दुःख को किसी भाँति सहन करूँगा। जिस प्रकार नत-मस्तका निशा-सुन्दरी धैर्य-पूर्वक नक्षत्रों द्वारा जागरण करती हुई प्रतीक्षा करती है, उसी प्रकार मैं भी निःस्तब्ध होकर तेरी प्रतीक्षा करूँगा।

कभी न कभी तो प्रकाश होकर इस अन्धकार का अवसान होगा ही और तेरी वाणी आकाश के अञ्चल को चीरती हुई स्वर्ण-धारा के रूप में अवतरित होगी!

तब तेरी वाणी मेरे पक्षियों के प्रत्येक नीड़ से गीत बनकर निकलेगी और तेरी रागिनियाँ मेरे समस्त वन्य-कुञ्जों में से पुष्पों के रूप में फूट निकलेंगी!

२०

हाय, जिस दिन कमल खिला, उस दिन अनमना सा होने के कारण मैं इसे जान ही न पाया और यद्यपि मेरी डोली खाली ही थी, परन्तु फिर भी मैंने उस पुष्प की ओर ध्यान भी न दिया !

बस, कभी-कभी मुझ पर एक प्रकार की उदासी सी अवश्य छा जाया करती और मैं स्वप्न से चौंककर दक्षिण पवन में एक विलक्षण सुगन्ध के मधुर आभास का अनुभव सा करने लगता।

उस अस्पष्ट माधुर्य ने मेरे हृदय में लालसा की एक पीड़ा उत्पन्न कर दी और मुझे ऐसा बोध हुआ कि यह वसन्त की उत्सुक प्राणवायु है जो अपनी पूर्णता खोज रही है !

उस समय मैंने यह न जाना कि वह मेरे इतना निकट है, मेरी ही है और यह अशेष माधुर्य्य मेरे ही अन्तःकरण में प्रस्फुटित हुआ है !

२१

अब मुझे अपनी नाव अवश्य खोल देनी चाहिए। मुझे खेद है कि आलस्य में मेरा सारा समय किनारे पर ही व्यतीत हुआ जा रहा है!

वसन्त अपना वैभव बिखेरकर विदा भी हो गया और मैं? मैं विशीर्ण एवं निरर्थक पुष्पों के भार से अवनत, आलस्य में ही बैठा हुआ हूँ!

तरङ्गें कोलाहल करने लगी हैं और किनारे की कुञ्ज-गलियों में पीली पत्तियाँ मर्म्मर शब्द करती हुई निपतित हो रही हैं।

किस शून्य की ओर तुम ताक रहे हो? क्या तुम वायु में फैलते हुए इस उल्लास का अनुभव नहीं करते जो सुदूर के गायनों के स्वरों के साथ पारवर्त्ती तट की ओर से प्रवाहित होकर आ रहा है?

२२

तू झड़ी लगे हुए सावन की सघन छाया में रात्रि सा निःस्तब्ध, दबे पैरों, सबों की दृष्टि बचाता हुआ चलता है !

शब्दायमान पूर्वीय पवन के निरन्तर आह्वानों की अवहेलना करते हुए आज प्रभात ने अपने नेत्र बन्द कर लिये हैं और सतत-जागरूक नील गगन पर एक गम्भिन आवरण-सा पड़ गया है।

वनस्थलियों ने अपना गायन रोक दिया है और प्रत्येक सदन के द्वार बन्द हैं। इस निर्जन मार्ग का बस तू ही एक पंथी है। मेरे एकमात्र सखा, मेरे प्रियतम ! मेरे घर के तो समस्त द्वार खुले हुए हैं ! स्वप्न की भाँति कहीं तुम निकले न चले जाना !!

२३

मित्र, क्या तू इस प्रचण्ड वृष्टि-वातमय रात्रि में भी अभिसार के लिए बाहर निकला है? इस समय तो आकाश एक हताश व्यक्ति की भाँति कराह रहा है।

आज की रात मुझे नींद कहाँ! मित्र, मैं तो रह-रहकर द्वार खोलता और बाहर के इस अन्धकार को देखता हूँ।

मुझे तो अपने सामने कुछ भी नहीं सूझ पड़ रहा है। मैं साश्चर्य सोचता हूँ कि तेरा मार्ग है किस ओर!

किस कज्जल-काली नदी के तमोपूर्ण तट से, किस भयंकर वन के सुदूर प्रान्त से, किस अन्धकार की दुर्गम गहनता से होकर तू मेरे पास आने के लिए अपने मार्ग पर टटोल-टटोल-कर पैर रखता हुआ आ रहा है, सखे?

२४

यदि दिन बीत गया है, यदि पक्षियों का कलरव शान्त हो गया है और यदि पवन का समीरण परिश्रान्त होकर शिथिल पड़ गया है तो अन्धकार का सघन आवरण मेरे ऊपर वैसे ही डाल दे, जैसे तूने पृथ्वी को निद्रा की चादर उढ़ाई है और सायंकाल के कुम्हलाते हुए कमल-कुल की पँखड़ियों को कोमलता के साथ बन्द कर दिया है।

जिस प्रकार तू अपनी दयामयी रजनी के अञ्चल की छाया में पुष्पों को नव-जीवन प्रदान करता है, उसी प्रकार तू उस यात्री की लज्जा और दीनता भी दूर करके उसे नूतन-जीवन दान दे, जिसका पाथेय गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के पूर्व ही समाप्त हो गया है, जिसके वस्त्र फटे और धूल से सने हुए हैं और जिसका पौरुष सर्वथा क्षीण हो गया है।

२५

जब मैं रात्रि में परिश्रान्त होकर पड़ूँ तब अपने आपको पूर्णतया तुझ पर छोड़कर, बिना किसी प्रकार का प्रयास किये ही मुझे आशङ्का-रहित होकर निद्रा के हाथों आत्म-समर्पण करने दे!

जिस समय मेरा चित्त क्लान्त हो, तू उस समय मुझे अपनी आराधना का विफल प्रयास करने के हेतु बाधित न कर!

जागृति के नवीन उल्लास द्वारा दृष्टि को पुनः स्वस्थ करने के हेतु तू ही तो दिन की थकी हुई आँखों पर रात्रि का परदा डाल देता है!

२६

वह आया और आकर मेरे पास बैठा रहा; किन्तु मेरी नींद न खुली। धिक्कार है मुझ अधम की उस नींद को!

जिस समय वह आया उस समय रात्रि में निःस्तब्धता का साम्राज्य था। हाथों में वह अपनी वीणा लिये हुए था जिसकी मधुर रागिनियों से मेरा स्वप्न प्रतिध्वनित हो उठा!

हाय, मेरी रातें इस प्रकार क्यों नष्ट हो जाती हैं? आह! मैं क्यों उसके दर्शन से वञ्चित रह जाता हूँ जिसकी श्वास नित्य मेरी निद्रा का स्पर्श किया करती है?

२७

प्रकाश, अरे प्रकाश है कहाँ? उसे धधकते हुए विरहानल से प्रज्वलित कर लो!

दीपक होते हुए भी उसमें ज्योति-शिखा का चिह्न तक नहीं,—मेरे हृदय! क्या तेरे भाल में यही लिखा था? आह, इससे तो तेरे लिए मृत्यु कहीं अच्छी होती!

विपत्ति तेरा द्वार खटखटाकर सन्देश दे रही है कि तेरा स्वामी जाग रहा है और रात्रि के अन्धकार में तुझे प्रेमाभिसार के लिए बुला रहा है।

आकाश मेघाच्छन्न है और निरन्तर वृष्टि हो रही है। न जाने मेरे अन्तर में यह क्या आन्दोलन हो रहा है—मुझे उसका अभिप्राय तक ज्ञात नहीं!

चपला की क्षणिक चमक मेरी दृष्टि पर अन्धकार का और भी गहरा आवरण डाल देती है तथा मेरा हृदय उस पथ को टटोलने लगता है, जिसकी ओर निशा का सङ्गीत मेरा आवाहन करता है।

प्रकाश, अरे प्रकाश है कहाँ? उसे धधकते हुए विरहानल से प्रज्वलित कर लो! घन गर्जन कर रहे हैं और आँधी शून्य में सनसनाती हुई चली जा रही है। रात्रि श्याम-शिलाखण्ड के समान ही अँधेरी है। अन्धकार में ही समय को व्यर्थ व्यतीत न कर दो। प्रेम-प्रदीप को अपने जीवन से आलोकित कर दो न!

२८

बेड़ियाँ कठोर अवश्य हैं; पर जब मैं उन्हें तोड़ने का प्रयत्न करता हूँ तो मेरे हृदय में व्यथा होने लगती है!

मैं केवल मुक्ति ही चाहता हूँ; परन्तु उसकी भी कामना करते मुझे लज्जा आती है!

मुझे विश्वास है कि तू अमूल्य वैभव का भाण्डार है और मेरा मित्र है; पर अपने घर में भरी हुई झूठी चमक-दमकवाली वस्तुओं को सहसा निकाल फेंकने का भी तो साहस मुझे नहीं होता!

मैं जिस चादर को ओढ़े हुए हूँ, वह मिट्टी और मृत्यु की ही कफ़नी है—मैं उससे घृणा भी करता हूँ—परन्तु फिर भी मैं उसे प्रेम-पूर्वक अपने शरीर से लपेटे हूँ।

मैं ऋण में डूबा हुआ हूँ, मेरी विफलताएँ महान् हैं और मेरी लज्जा गुप्त और गहन है; तथापि जब मैं अपने कल्याण की याचना करने के निमित्त आता हूँ तो भय से काँप उठता हूँ कि कहीं मेरी प्रार्थना स्वीकार न हो जाय!!

२९

जिसे मैं अपने नाम की दीवार से छिपाये और परिवेष्टित किये रखता हूँ वही इस कारागार में रो रहा है। मैं सदैव ही इस दीवार को अपने चारों ओर बनाने में व्यस्त रहता हूँ और ज्यों-ज्यों यह दीवार आकाश की ओर उठती जाती है, त्यों-त्यों इसकी अँधेरी छाया में मेरा प्रकृत-स्वरूप ही तिरोहित होता जाता है।

मुझे इस महान् दीवार पर बड़ा गर्व है और मैं निरन्तर मिट्टी और बालू का गारा उस पर चढ़ाता रहता हूँ कि कहीं इस नाम में कोई नन्हा-सा भी छिद्र न रह जाय और मेरे इन समस्त उद्योगों के फल-स्वरूप मेरा प्रकृत-स्वरूप तिरोहित होता जाता है!

३०

अभिसार के लिए मैं तो अकेली ही निकली थी; परन्तु है! नीरव अन्धकार में यह कौन मेरा अनुसरण कर रहा है?

अपने को उससे छिपाने के लिए मैं इधर-उधर हट जाती हूँ; परन्तु उससे तो पिण्ड ही नहीं छूटता!

वह अपनी ऐंठ भरी चाल से मार्ग की धूल उड़ाता हुआ चल रहा है और मेरे प्रत्येक शब्द पर उच्च स्वर से चिल्लाने लगता है।

प्रभो! वह मेरी आत्मा का ही तो प्रतिरूप है; परन्तु वह नितान्त निर्लज्ज है और इसी कारण मुझे उसके साथ तेरे द्वार पर आते लज्जा आती है!

२१

"बन्दी ! मुझे यह तो बताओ कि तुमको बँधुआ किसने बनाया ?"

"मेरे स्वामी ने", बन्दी ने उत्तर दिया—"मैं समझता था कि संसार में धन और बल में मैं सबसे बाजी ले जाऊँगा; अत: जो धन मुझे अपने राजा को देना उचित था, उसे मैंने अपने ही कोष में रख छोड़ा। निद्राभिभूत होने पर मैं जाकर उस शय्या पर लेट गया, जो मेरे नहीं, मेरे स्वामी के लिए थी। जागृत होने पर मैं क्या देखता हूँ कि मैं स्वयं अपने ही कोषागार में बन्दी हूँ।"

"बन्दी ! अच्छा यह तो बताओ कि इस अटूट बेड़ी को गढ़ा किसने ?"

बन्दी बोला, "मैंने स्वयं ही बड़े यत्न से इस बेड़ी को बनाया है। मैंने यह सोच रक्खा था कि मेरी अजेय शक्ति सारे विश्व को बन्दी बना लेगी और मैं निश्चिन्त होकर अकेला अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग करूँगा। अत: प्रचण्ड अग्नि में तपाकर और हथौड़े की निर्मम चोटें लगाता हुआ मैं उसे बनाने में व्यस्त रहा। अन्त में जब कार्य समाप्त हुआ और कड़ियाँ पूरी और अछिद्य हो गईं तो मैंने देखा कि इसने तो स्वयं मुझे ही अपने बन्धन में जकड़ लिया है।"

३२

इस संसार में जितने भी मनुष्य मुझसे प्रेम करते हैं वे सभी मुझे सब प्रकार से यहाँ बाँध रखना चाहते हैं। परन्तु तेरा प्रेम प्रगाढ़तर होते हुए भी उनके प्रेम से विपरीत है—तू तो मुझे मुक्त रखता है!

इस भय से कि मैं कहीं उन्हें भूल न जाऊँ, वे क्षणमात्र के लिए भी मेरा साथ नहीं छोड़ते। परन्तु दिन पर दिन व्यतीत हो जाने पर भी तेरा तो दर्शन तक नहीं मिलता!

मैं तुझे चाहे पुकारूँ या न पुकारूँ, तुझे अपने हृदय में प्रतिष्ठित करूँ या न करूँ; परन्तु तू सर्वथा निरपेक्ष रहता हुआ सदा मेरे ही प्रेम की प्रतीक्षा किया करता है!

३३

दिन के प्रकाश में वे मेरे घर में आये और बोले, 'हम यहाँ, बस, थोड़ा सा स्थान चाहते हैं।'

उन्होंने तो यही कहा था, "हम तुम्हारे भगवान् की सेवा में सहायता करेंगे और उसके प्रसाद में से जितना भी हमारे भाग में आवेगा, केवल उतना ही विनीत भाव से लेकर सन्तुष्ट रहेंगे।" यह कहकर वे एक कोने में शान्त और विनम्र भाव से बैठ गये।

परन्तु रात्रि के अन्धकार में देखता क्या हूँ कि वे प्रबल रूप से उद्दण्डता-पूर्वक मेरे पवित्र मन्दिर में घुस पड़े और घृणित लोलुपता के साथ भगवान् की वेदी पर का नैवेद्य उठाकर ले गये!

३४

नाथ ! मुझमें बस इतना ममत्व छोड़ कि मैं तुझे अपना सर्वस्व कह सकूँ।

मुझमें केवल इतनी आकांक्षा शेष रहे कि मैं अपने चतुर्दिक् बस तेरा ही अनुभव कर सकूँ, प्रत्येक पदार्थ में केवल तुझे ही पाऊँ और प्रतिक्षण अपना प्रेम तुझे अर्पित कर सकूँ।

मुझमें अहंभाव की मात्रा इतनी हीन रह जाय कि वह तुझे किसी प्रकार भी न छिपा सके !

मेरे बन्धन का—तेरे प्रेम के बन्धन का—केवल उतना ही भाग शेष रह जाय जितने से मैं तेरी मौज से आबद्ध हूँ और जिससे मेरे जीवन में तेरा उद्देश्य प्रतिफलित होता है !

३५

जहाँ मन निःशङ्क है और स्वाभिमान से माथा ऊँचा रहता है; जहाँ ज्ञान निर्मुक्त है; जहाँ संसार सङ्कीर्ण एवं विभाजनकारी गृह-प्राचीरों द्वारा खण्ड-खण्ड नहीं कर दिया गया है; जहाँ वाणी सदा सत्य-मूलक होती है; जहाँ अथक उद्योग अपनी भुजाएँ पूर्णता की ओर प्रसारित करता है; जहाँ विवेक की निर्मल धारा मृत रूढ़ियों के शून्य मरुस्थल में विलुप्त नहीं हो गई है और जहाँ मन तेरे नेतृत्व में सतत विकासशील विचारों और कर्मों की ओर अग्रसर होता रहता है—मेरे पिता! स्वातन्त्र्य के ऐसे स्वर्गस्थल में मेरा देश जागृत हो!

३६

मेरे प्रभो! मेरी तुझसे यही प्रार्थना है कि तू मेरे हृदय-दौर्बल्य के मूल पर कुठाराघात कर!

मुझे शक्ति दे कि मैं अपने सुख-दु:खों को अविचल भाव से सहन कर सकूँ।

मुझे बल दे कि मैं सेवा द्वारा अपना प्रेम सार्थक कर सकूँ।

मुझे शक्ति दे कि न तो मैं कभी दीन-दुखियों से विमुख हूँ और न धृष्ट पराक्रम के आगे शिर ही झुकाऊँ।

मुझे बल दे कि मैं अपने मन को दैनिक जीवन की तुच्छ बातों से परे रक्खूँ।

और, मुझे यह भी सामर्थ्य दे कि मैं अपना पौरुष प्रेमपूर्वक तेरी इच्छा में लीन कर दूँ।

३७

अपने सामर्थ्य के नितान्त क्षीण हो जाने पर मैंने समझा था कि मेरी जीवन-यात्रा समाप्ति पर है—मेरा पथ आगे अवरुद्ध है, मेरा पाथेय समाप्त हो गया है और मेरा वह समय आ गया है कि मैं निःशब्द एवं अ-लोकसेवित विजन-स्थली का आश्रय ग्रहण करूँ ।

परन्तु, यहाँ तो मेरे जीवन में तेरी लीलाओं का अन्त ही होता नहीं दिखाई देता ! जिह्वा पर गीत का एक बोल समाप्त होते न होते हृदय से पुनः नवीन रागिनियाँ निकल पड़ती हैं और पुराने पथों का विलोप भी नहीं होने पाता कि नवीन और आश्चर्यपूर्ण प्रदेशों का प्रादुर्भाव होना प्रारम्भ हो जाता है ।

३८

मेरा हृदय निरन्तर यही कहता रहे कि मैं तुझे—केवल तुझे—चाहता हूँ !

मुझे अहर्निश व्याकुल बनाये रखनेवाली समस्त वासनाएँ मिथ्या और नितान्त निःसार हैं।

जिस प्रकार प्रकाश के लिए की गई प्रार्थनाओं को रात्रि अपने तिमिराञ्चल में तिरोहित किये रहती है, ठीक उसी प्रकार मेरी घोर अचेतनता के भीतर से भी यह पुकार प्रतिध्वनित होती रहती है कि मैं तुझे—केवल तुझे—चाहता हूँ !

जिस प्रकार झंझा अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ शान्ति पर आघात करती हुई भी शान्ति में ही अपना अन्तिम आश्रय ढूँढ़ती है, उसी प्रकार मेरा विद्रोह तेरे प्रेम पर आघात करता हुआ भी यही पुकारता रहता है कि मैं तुझे—केवल तुझे—चाहता हूँ !

३९

जब मेरा हृदय कठोर और शुष्क हो जाय तो मुझ पर करुणा-वृष्टि करते हुए आना !

जब मेरे जीवन से माधुर्य का लोप हो जाय तो सङ्गीत-सुधा का संचार करते हुए आना !

जब संसार के कार्यों का कोलाहल मुझे चारों ओर से तुमुल गर्जना-पूर्वक घेर ले और मेरा पारलौकिक सम्पर्क तोड़ दे तब हे मेरे शान्तिस्वरूप स्वामिन् ! तुम अपनी शान्ति और सुख लेकर मेरे समीप आ जाने की कृपा करना !

जब मेरा दीन हृदय एक कोने में दबककर बैठ रहे तो मेरे राजन् ! मेरा द्वार बलपूर्वक तोड़कर तुम अपने राजकीय समारोह के साथ आ जाना !

जब भ्रम और मलिनता से वासना मेरे मन को अन्धा कर दे तो हे शुद्धस्वरूप, हे अनिद्र ! अपने प्रचण्ड आलोक एवं गर्जना के साथ आने की कृपा करना !

४०

मेरे देवता ! न जाने कब से मेरे इस शुष्क हृदय में वृष्टि नहीं हुई है ! क्षितिज पर भयङ्कर शून्यता का साम्राज्य है, आकाश पर कहीं हलके से हलके भी बादल का आवरण नहीं और दूर-दूर तक शीतल सीकरों के आभास तक का अभाव है।

चाहे तू अपनी क्रुद्ध, विकराल और प्रलयङ्करी आँधी ही क्यों न भेज और बिजली की कड़क से आकाश के अञ्चल को एक सिरे से दूसरे सिरे तक चकाचौंध कर दे; परन्तु प्रभो ! तू इस दिग्व्याप्त, नीरव, निश्चल, प्रखर और दारुण उत्ताप का तो संहार ही कर दे जो हृदय को घोर नैराश्य से जलाये डालता है !

जिस प्रकार पिता के क्रोध करने पर बालक की माता सजल-चक्षु हो जाती है उसी प्रकार अपने सदय मेघों की छाया हम पर कर दो, नाथ !

४१

सबों के पीछे इस प्रकार अपने को एक कोने में छिपाये हुए, प्यारे ! तुम भला यहाँ कहाँ खड़े हुए हो ? तुम तो वहाँ पांसुल पथ पर से उपेक्षित होते हुए धक्के खा रहे हो और मैं यहाँ व्याकुल भाव से तेरी प्रतीक्षा में पूजा की सामग्री सजाये हुए बैठी हूँ। पथिक बराबर आ-आकर मेरे पूजा-पुष्पों को एक-एक करके लिये जा रहे हैं और अब मेरी डलिया लगभग खाली हो चली है।

प्रभात-बेला बीत गई, मध्याह्न का समय समाप्त हो गया और अब सन्ध्या के अन्धकार में मेरे नेत्र निद्राभिभूत हो चले हैं। घर को लौटनेवाले लोग मुझे देख-देखकर हँसते हैं जिससे मैं लाजों मरो जाती हूँ। एक भिखारिन की भाँति मैं अपने मुँह को अञ्चल से ढके बैठी रहती हूँ। जब लोग मुझसे पूछते हैं कि मैं क्या चाहती हूँ तो मैं अपनी आँखें नीची कर लेती हूँ और उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं देती।

हाय, मैं लोगों से कहूँ भी तो कैसे कि मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही हूँ और तुमने मुझे आने का वचन भी दिया है। लाज के कारण मेरे मुख से भला यह कैसे निकले कि मैं अपनी यह अकिञ्चनता तुम्हें दहेज में देने के लिए बैठी जुगो रही हूँ। आह ! मैं अपने हृदय के एकान्त में ही इस अभिमान को छिपाये बैठी हूँ।

४१ क

घास पर बैठी मैं आकाश की ओर निहारती हुई तुम्हारे आकस्मिक शुभागमन के विभूतिमय समारोह का सुख-स्वप्न देखा करती हूँ कि उस समय कैसे सहसा समस्त दीपालोक जगमगा उठेगा, तुम्हारे रथ पर स्वर्ण-पताकाएँ फहराती होंगी और पथ पर स्तम्भित भाव से खड़े लोग देखेंगे कि तुमने अपने आसन से उतरकर मुझ जीर्णवसना एवं दीना भिखारिणी को, जो लज्जा और गर्व के कारण वसन्त-वायु-विताड़ित लता की भाँति विकम्पित हो रही थी, धूलि से उठाकर अपने पार्श्व में बिठा लिया!

परन्तु समय व्यतीत हुआ जा रहा है और तुम्हारे रथ के पहियों का कहीं शब्द भी नहीं सुनाई देता। न जाने कितने जुलूस कोलाहल-पूर्वक और सजावट तथा वैभव की चमक-दमक दिखाते हुए निकले चले जा रहे हैं। क्या एक तुम्हीं सबके पीछे अपने को एक कोने में छिपाये और चुपचाप खड़े रहोगे? और, क्या एक मैं ही असफल उत्कण्ठा में अपने हृदय को घुलाती हुई रो-रोकर तुम्हारी प्रतीक्षा करती रह जाऊँगी?

४२

जीवन के प्रभातकाल में यह प्रस्ताव सुनने में तो आया था कि हम दोनों—बस, केवल तू और मैं—एक नाव में बैठकर चल देंगे और हमारी इस अनिर्दिष्ट और अनन्त तीर्थ-यात्रा की ख़बर संसार के किसी भी प्राणी को कानों-कान न होगी।

उस असीम सागर के बीच जब तू सस्मित भाव से मेरे गीत सुनने को बैठेगा, तब वे अबाध तरङ्गों की भाँति शब्दा-डम्बर से सर्वथा मुक्त होकर उमड़ पड़ेंगे!

क्या अब तक उस यात्रा का समय नहीं आया? क्या अब भी कार्य बाक़ी है? लो, तटों पर सन्ध्या झुक आई और गोधूलि-बेला के क्षीयमान प्रकाश में पक्षी अपने कोटरों की ओर उड़-उड़कर आने लगे।

हमारी नौका न जाने कब बन्धन-मुक्त होकर अस्तोन्मुख सूर्य की अन्तिम रश्मियों के समान रात्रि के अन्धकार में अदृश्य हो जाय!

४३

एक शुभ दिन वह था जब मेरे यहाँ तेरे स्वागत का कुछ भी उपक्रम न था और फिर भी, हे सर्वेश ! तूने एक साधारण व्यक्ति की भाँति, अनाहूत और अज्ञात रूप से मेरे हृदय में प्रवेश किया और मेरे जीवन के अनेक पलायमान मुहूर्त्तों पर नित्यता की छाप लगा दी !

और आज, जब संयोगवश मैं उन्हें देखकर उन पर तेरे हस्ताक्षरों को अङ्कित पाता हूँ तो ज्ञात होता है कि वे मुहूर्त्त मेरे तुच्छ और विस्मृत दिनों की हर्ष और शोकमयी घटनाओं की स्मृति के साथ धूलि में बिखरे हुए पड़े हैं !

तूने मुझे धूलि में बाल-क्रीड़ा करते हुए देखकर घृणा-पूर्वक मुख नहीं मोड़ा और जिस पद-ध्वनि को मैंने अपने क्रीड़ा-स्थल में सुना था, उसी को मैं आज प्रत्येक नक्षत्र से प्रतिध्वनित होती हुई सुन रहा हूँ !

४४

मेरा आनन्द इसी में है कि जहाँ छाया प्रकाश का अनुगमन करती हो और जहाँ ग्रीष्मोपरान्त वर्षा का आगमन होता हो, उसी मार्ग के एक किनारे पर बैठकर प्रतीक्षा किया करूँ।

अज्ञात लोकों से संवाद लानेवाले दूत मेरा अभिवादन करके पुनः अपने मार्ग पर शीघ्रता-पूर्वक चल देते हैं। तब भीतर ही भीतर मेरा हृदय हर्ष-विभोर हो उठता है और समीर-संचरण मुझे अत्यन्त सुखद बोध होने लगता है।

मैं उषःकाल से सन्ध्या पर्य्यन्त यहाँ द्वार पर केवल इस विश्वास में ही बैठी रह जाती हूँ कि कभी न कभी तो वह शुभ घड़ी आवेगी ही जब मुझे तेरे दर्शन का सुख-सौभाग्य प्राप्त होगा।

तो, तब तक मैं अकेली ही बैठी हँसती-गाती हूँ—इस अवधि में वायु आशा-सौरभ से सुवासित होती रहेगी !

४५

क्या तुमने उसकी नीरव पद-ध्वनि नहीं सुनी है? वह आता है, आता है, नित्य आता है!

प्रत्येक क्षण और प्रत्येक युग में, प्रत्येक दिन और प्रत्येक रात में वह आता है, आता है, नित्य आता है!

मन की विभिन्न वृत्तियों में मैंने अनेक गीत गाये हैं परन्तु उनके स्वरों से सदैव यही तो उद्घोषित हुआ है,—"वह आता है, आता है, नित्य आता है!"

समुज्ज्वल मधुमास के सुवासित दिनों में वन-पथ से होकर वह आता है, आता है, नित्य आता है!

श्रावण की अँधेरी और सजल रात्रियों में गरजते हुए मेघों के रथ पर बैठकर वह आता है, आता है, नित्य आता है!

निरन्तर पड़नेवाले शोकों में हम यह उसी के चरणों का भार तो अपने हृदय पर अनुभव करते हैं तथा उसी के चरणों का स्वर्ण-स्पर्श पाकर मेरा सुख समुज्ज्वल हो उठता है!

४६

न जाने कितने दिनों से तू निरन्तर मुझसे मिलने के लिए मेरे समीप चला आ रहा है। तेरे यह सूर्य और तारे भला कहीं तुझे सदा के लिए मुझसे छिपाके रह सकते हैं ?

प्रभात काल और सन्ध्या के समय अनेक बार तेरे चरणों की ध्वनि सुनाई पड़ी है और तेरे दूत ने मेरे हृदय में प्रवेश करके मुझे एकान्त में आमन्त्रण दिया है !

आज न जाने क्यों मेरा मन सर्वथा चञ्चल हो रहा है और मेरे हृदय में एक प्रकार का हर्षोद्वेलन सा हो रहा है।

ऐसा जान पड़ता है कि अब समस्त कार्यों को समाप्त कर देने का समय आ गया है और मैं वायु में तेरी मधुर उपस्थिति की सूक्ष्म गन्ध अनुभव भी कर रहा हूँ !

४७

उसकी विफल प्रतीक्षा में लगभग सारी रात बीत गई। मुझे भय है कि मेरे थककर सो जाने पर वे कहीं सवेरे मेरे द्वार पर अचानक न आ पहुँचें। सखियो, द्वार खुला रखना—उन्हें मना मत करना!

तुमसे मेरी विनती है कि यदि उनकी आहट से मेरी नींद न खुले तो तुम मुझे जगाने का भी प्रयत्न मत करना! पक्षियों के कलगान और समीर के उषःकालीन आलोकपर्व के कोलाहल द्वारा मैं अपनी निद्रा से जागृत होना नहीं चाहती। यदि मेरे स्वामी सहसा मेरे द्वार पर आ भी जायँ तो मुझे निर्विघ्न सोते ही रहने देना।

आह निद्रे, अमूल्य निद्रे! तू तो बिदा के लिए केवल उनके स्पर्श की ही प्रतीक्षा कर रही है! जब वे निद्रान्धकार से निस्सृत स्वप्न की भाँति आकर मेरे सन्मुख खड़े हो जायँगे तब उन्हीं की आलोक-स्मिति में तो तू अपनी पलकें खोलेगी!

मेरी कामना है कि जागरणोपरान्त मुझे उन्हीं की ज्योति एवं रूप का सर्वप्रथम दर्शन प्राप्त हो, मेरी उद्‌बुद्ध आत्मा को सर्वप्रथम होनेवाला हर्षोल्लास भी उन्हीं की चितवन से मिले एवं आत्मानुभूति होते ही मैं पुनः उन्हीं में लीन हो जाऊँ!

४८

प्रभात-कालीन नीरवता का सागर पक्षि-कलरव के रूप में तरङ्गायमान हो उठा। पथ-पार्श्व-वर्त्ती पुष्पावलि विकसित हो गई, मेघों की दरीचियों से प्रकाश का स्वर्ण-वैभव बिखर पड़ा; परन्तु हम अपनी धुन में इधर कुछ ध्यान न देकर बराबर अग्रसर ही होते रहे।

हमने न तो आनन्द के गीत ही गाये और न कोई खेल ही किया; न गाँव में जाकर क्रय-विक्रय किया, न हँसे, न बोले और न राह में ही कहीं रुके। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, हम और अधिक शीघ्रता से बढ़ते गये।

भगवान् भास्कर चढ़कर बीच आकाश में जा पहुँचे, कपोत छाया में बोलने लगे और मध्याह्न-कालीन उत्तप्त वायु के बवंडर में सूखी पत्तियाँ नाचने और चक्कर खाने लगीं। गड़रिये का लड़का वट-वृक्ष की छाया में निद्रातुर होकर स्वप्न देखने लगा। मैं भी जलाशय के निकट हरी घास पर अपने श्रमखिन्न अङ्गों को पसारकर पड़ रहा।

मेरे साथी मेरी ओर देखकर तिरस्कार-पूर्वक हँसे और गर्व से अपना माथा उठाये हुए आगे बढ़ गये। न उन्होंने पीछे मुड़कर देखा, न ज़रा रुके। वे और आगे बढ़ते हुए सुदूरवर्त्ती नील एवं अस्पष्ट वायुमंडल में विलुप्त हो गये।

४८ क

वे अनेक प्रान्तरों एवं पर्वतों को पार करते हुए अपरिचित एवं दूरस्थ देशों में होकर निकले। हे अनन्त पथ के वीर यात्रियो, तुम धन्य हो! उपहास और निन्दा ने मुझे उठने के लिए प्रेरित किया; परंतु मेरे हृदय में उसकी कुछ भी प्रतिक्रिया न हुई। सुख की धूमिल छाया में पड़े ही पड़े मैंने अपने आपको सुखमय पतन के गर्त्त में निमग्न कर दिया।

सूर्य्य की सुन्दर रश्मियों से विभूषित हरित छाया की विश्रान्ति ने धीरे-धीरे मेरे हृदय को अभिभूत कर लिया। मैं भूल गया कि मैं किस लिए यात्रा करने निकला था और मैंने बिना किसी प्रकार के विरोध के अपने मन को राग-रङ्ग के चक्कर में फँसा दिया।

अन्त में जब मैंने उनिद्रित होकर अपनी आँखें खोलीं तो देखा कि तू मेरे पास खड़ा अपनी मधुर मुसकान से मेरी निद्रा को आप्लावित कर रहा है। उफ़! मैं लम्बे और कष्टप्रद मार्ग को व्यर्थ ही डर रहा था और अकारण ही सोच बैठा था कि तुझ तक पहुँचने के लिए अत्यधिक प्रयास अपेक्षित है!

४९

तू अपने सिंहासन से उतरा और मेरी कुटिया के द्वार पर आकर खड़ा हो गया !

मैं अकेला, एक कोने में बैठा हुआ गुनगुना रहा था। उसकी भनक तेरे कानों में पड़ी, तू नीचे उतर आया और मेरी कुटिया के द्वार पर आकर खड़ा हो गया !

तेरी सभा में तो बड़े-बड़े कुशल गायक उपस्थित रहते हैं और हर घड़ी ही गायन हुआ करता है; पर इस नौसिखिए के सीधे-सादे पद ने तेरी प्रेम-तंत्री को झंकृत कर दिया ! मेरी एक छोटी सी करुण तान विश्व के महागायन में लीन हुई ही थी कि तू मेरे लिए पारितोषिक-स्वरूप एक फूल लिये हुए अपने आसन से उतरा और आकर मेरी कुटिया के द्वार पर खड़ा हो गया !

५०

मैं गाँव की गलियों में द्वार-द्वार भीख माँग रही थी कि दूर पर एक ऐश्वर्यमय स्वप्न की भाँति तुम्हारा सुवर्ण रथ दिखलाई पड़ा। मैं साश्चर्य सोचने लगी कि हैं! ये राजराजेश्वर भला कौन हैं!

मैंने आशान्वित होकर सोचा कि अब तो मेरे दुर्दिनों का अन्त होनेवाला है और मैं अयाचित दान पाने एवं मार्ग की धूलि पर धन बिखेरे जाने की प्रतीक्षा में खड़ी रही।

जहाँ मैं खड़ी थी, वहाँ आकर तुम्हारा रथ रुक गया। तुम्हारी दृष्टि मुझ पर पड़ी और तुम मुस्कराते हुए उतर पड़े। मैं समझी कि अब कहीं जाकर जीवन का सौभाग्योदय हुआ चाहता है। परन्तु उसी समय तुमने अकस्मात् अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर कहा, "ला, मुझे क्या देती है?"

५० क

आह ! एक भिखारिन के सामने भीख माँगने के लिए तुम्हारा हाथ पसारना ! कैसा राजकीय परिहास था वह ! पहिले तो मैं सिटपिटाकर किङ्कर्त्तव्य-विमूढ़ भाव से खड़ी रह गई; परन्तु फिर मैंने अपनी झोली में से अन्न का केवल एक छोटा सा दाना धीरे से निकाला और तुम्हें दे दिया।

परन्तु दिन का अन्त होने पर जब मैंने पृथ्वी पर अपनी झोली ख़ाली की और अन्न की उस छोटी सी ढेरी में सोने का एक कण देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैं बिलख-बिलखकर रोती और पश्चात्ताप करती कि हाय ! मैंने तुम्हें अपना सर्वस्व क्यों न दे डाला !

५१

रात्रि का अन्धकार घनीभूत हो गया था। हमारे दिन भर के समस्त व्यापार समाप्त हो चुके थे। हमने सोचा कि अब तो रात में कोई अतिथि आने को शेष रह नहीं गया है तथा गाँव के सब द्वार बन्द हो चुके हैं। परन्तु कुछेक लोगों ने कहा, "अभी महाराज तो आने को बाक़ी ही हैं।" हमने हँसकर कहा, "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता!"

फिर ऐसा ज्ञात हुआ कि द्वार कोई खटखटा रहा है। हमने यही समझा कि वह हवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अस्तु, दीपक बुझाकर सब सोने को लेट रहे। कुछेक लोग फिर बोले, "अरे, दूत आ गये।" हमने हँसकर यही कहा, "नहीं जी, यह हवा ही है!"

रात के सन्नाटे में पुन: कुछ खटका हुआ। नींद में भरे हुए हम लोगों ने समझा कि कहीं दूर पर मेघ गर्जन कर रहे हैं। पृथ्वी काँप उठी, दीवारें हिल पड़ीं और हमारी नींद उचट गई। कुछ लोगों ने कहा, "हो न हो, यह पहियों का ही शब्द है"; परन्तु नींद में ऊँघते हुए हमने फिर भी यही बड़बड़ा दिया, "अजी नहीं, यह केवल बादलों की गड़-गड़ाहट ही है।"

५१ क

रात्रि अभी शेष ही थी कि दुन्दुभिनाद सुनाई पड़ा। किसी ने आवाज़ दी, "जागो, अब विलम्ब न करो!" हमने दोनों हाथों से कलेजा थाम लिया और भय से काँपने लगे। किसी ने कहा, "लो, वह महाराज की ध्वजा फहराती आ रही है!" हम झट उठ खड़े हुए और बोले, "अब विलम्ब का समय नहीं है।"

महाराज आ पहुँचे—पर उनके स्वागत के लिए आरती और मालाएँ कहाँ हैं? कहाँ है उनके बैठाने को आसन, कहाँ है मण्डप और कहाँ है शृङ्गार-सामग्री? हाय रे दुर्भाग्य! यह कैसी घोर लज्जा की बात है! किसी ने कहा, "अरे, यह सब रोना-धोना व्यर्थ है, अपने इन रिक्त करों से ही उनकी अभ्यर्थना करो और उन्हें अपने सूने ही घर में लिवा लाओ।"

अरे, द्वार खोल दो और शंख-ध्वनि होने न दो! इस घोर रात्रि में हमारे अँधेरे और निर्जन घर के राजा पधारे हैं! आकाश में मेघ गरज रहे हैं और रह-रहकर दामिनी की दमक से अन्धकार काँप सा उठता है। अपनी वही पुरानी और फटी हुई चटाई लाकर आँगन में बिछा दो! आज तो आँधी के साथ सहसा ही दुःख-रजनी के राजा का आगमन हुआ है!!

५२

मैंने सोचा था कि तेरे गले में पड़ी हुई गुलाब की माला तुमसे माँगूँ; पर मुझे ऐसा करने का साहस न हुआ। मैं प्रभात तक केवल इसी आशा में बैठी रही कि तेरे जाने के उपरान्त शय्या पर माला के कुछ टुकड़े तो मुझे पड़े हुए मिल ही जायँगे; परन्तु भिखारिणी की भाँति प्रातःकाल वहाँ जाकर खोजा तो दो-एक पँखुड़ियों के अतिरिक्त मुझे और कुछ न मिला!

अरे, मैं यह देख क्या रही हूँ! भला तेरे प्रेम का क्या यही चिह्न है? पुष्प, गन्ध-द्रव्य और सुवासित जल की झारी तो एक ओर रही, उनके स्थान पर तेरे प्रणय के चिह्न-स्वरूप मुझे मिलती है अग्नि-ज्वाला के समान जाज्वल्यमान और इन्द्रवज्र के समान भारवान् तेरी भीषण कृपाण! प्रभातकालीन तरुण किरणजाल झरोखों के मार्ग से आकर तेरी शय्या पर फैल जाता है। प्रातःकालीन पक्षी मुझसे चहक-चहककर पूछते हैं, "बाले! तुझे क्या मिला?" हाय; न पुष्प, न गन्ध-द्रव्य और न सुवासित जल की झारी! प्रणय-चिह्न के स्थान पर यह भीषण कृपाण!

मैं विस्मय-विमूढ़ भाव से बैठी-बैठी सोचती हूँ कि हाय, यह भी तुम्हारा कैसा दान है! मुझे कोई ऐसा स्थान भी

५२ क

तो नहीं मिलता कि जहाँ मैं इसे छिपा दूँ! अबला होने के कारण यदि इसे धारण करूँ तो लाजों मरती हूँ और इसे अपने हृदय से लगाती हूँ तो यह मुझे पीड़ा पहुँचाती है! फिर भी वेदना-भार के इस सम्मान को—तेरे इस दान को—मैं अपने हृदय में धारण करूँगी ही।

आज से इस संसार में मेरे लिए भय का नाम भी न रह जायगा और मेरे समस्त जीवन-संग्रामों में तेरी ही विजय होगी। तूने मृत्यु को मेरी सहचरी बना दिया है अतः मैं अपने जीवन से उसका अभिषेक करूँगी। मेरे बन्धन काटने के लिए तो तेरी यह कृपाण मेरे पास है—अब मेरे लिए संसार में भय का नाम भी न रह जायगा।

आज से मैं समस्त तुच्छ शृङ्गारों का परित्याग करती हूँ। हृदयेश! अब मुझे एकान्त में बैठकर रुदन अथवा प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी और न मेरे लिए लज्जा और शील ही रह जायगा। तूने तो अपनी कृपाण मेरे शृङ्गार के हेतु दे दी है; अब मुझे गुड़ियों के से साज-शृङ्गार की आवश्यकता ही क्या है?

५३

नक्षत्र-खचित एवं रंग-बिरंगे रत्नों से कुशलतापूर्वक जटित बड़ा सुन्दर है तेरा यह कङ्कण; परन्तु मेरे लिए तो उससे भी अधिक सुन्दर है सूर्यास्तकाल के क्रुद्ध लोहित वर्ण में विष्णु के फैले हुए गरुड़ पक्षों के समान पूर्ण रूप से प्रसारित तेरी बिजली सी बाँकी कृपाण !

मृत्यु के अन्तिम प्रहार से उत्पन्न हुई वेदना की पराकाष्ठा में जीवन के उस एक अन्तिम स्पन्दन की भाँति वह प्रकम्पित होती है और अपनी एक ही भीषण ज्वाला से पार्थिव भावों को भस्म करती हुई आत्मा की पवित्र ज्योति के समान उद्भासित होती है।

तारों के समान रत्नों से जटित बड़ा सुन्दर है तेरा कङ्कण; परन्तु वज्रपाणे ! तेरी कृपाण तो परम सौन्दर्य को लेकर निर्मित हुई है, जिसे देखने अथवा स्मरण करने से ही भय का संचार होता है !!

५४

मैंने तुमसे कुछ भी याचना नहीं की। मैंने तुम्हें अपना नाम तक नहीं बताया। जब तुम बिदा हुए तो मैं चुपचाप खड़ी रही। उस कुएँ के पास, जहाँ वृक्ष की छाया तिरछी होकर पड़ रही थी, मैं सर्वथा अकेली ही थी। स्त्रियाँ अपने मिट्टी के घड़ों को भरकर अपने-अपने घर चली गई थीं। उन्होंने मुझे पुकारा और कहा, "अरे आ, हमारे साथ चल। दोपहर होने को आ रही है"; परन्तु अस्पष्ट विचारधारा में लीन होने के कारण मैं आलस्य-पूर्वक वहीं रुकी रही।

और, जब तुम आये तो मैंने तुम्हारी पद-ध्वनि भी नहीं सुनी। जब तुम्हारी दृष्टि मुझ पर पड़ी तो तुम्हारे नेत्र उदास थे। जब तुमने मन्द स्वर में कहा, "अरे, मैं प्यासा पथिक हूँ", उस समय तुम्हारा कण्ठस्वर क्लान्त था। मैं अपने ध्यान से चौंक पड़ी और अपनी झारी से तुम्हारी अँजुली में जल डाल दिया। उस समय ऊपर पत्तियाँ खड़खड़ा रही थीं, कहीं घनी छाया में अदृश्य रूप से बैठी हुई कोयल अलाप रही थी और सड़क के मोड़ से "बाबला" पुष्प की सुगन्ध आ रही थी।

५४ क

जब तुमने मेरा नाम पूछा तो लज्जा के कारण मैं अवाक् ही खड़ी रही। भला मैंने ऐसा काम ही क्या किया था कि तुम मुझे स्मरण रखते ? किन्तु हाँ; यह स्मृति, कि प्यास बुझाने के हेतु मैं तुम्हें जलप्रदान कर सकी, सदैव मेरे हृदय में बसी रहेगी और उसे माधुर्य से आवेष्टित किये रहेगी ! दिन चढ़ आया है, चिड़ियाँ श्रान्त-स्वर से बोल रही हैं, ऊपर नीम की पत्तियाँ मर्मर शब्द कर रही हैं और मैं बैठी सोच रही हूँ—बस, सोच ही रही हूँ !!

५५

तेरा हृदय आलस्याभिभूत है और आँखें अब तक उनींदी हैं।

क्या तुझे अभी यह संवाद नहीं मिला कि बड़े ऐश्वर्य के साथ फूल काँटों में राज्य कर रहा है? जाग, ओ जाग्रत! समय को व्यर्थ न गँवा!

पथरीले मार्ग के छोर पर, अगम निर्जन प्रदेश में मेरा सखा सर्वथा अकेला बैठा हुआ है। उसे धोखा न दे। जाग, ओ जाग्रत!

मध्याह्नकालीन सूर्य के ताप से यदि आकाश हाँप और काँप रहा है तो इससे क्या?—और यदि तप्त बालुका-राशि अपना पिपासाञ्चल फैलाती है तो इससे भी क्या?

क्या तेरा अन्त:करण आनन्द से सर्वथा शून्य है? क्या तेरे पद के प्रत्येक आघात द्वारा मार्ग-वीणा से वेदना का मधुर राग न झंकृत हो उठेगा?

५६

अच्छा, तो तुझे इसी लिए मुझसे इतना अधिक आनन्द मिलता है! क्या इसी लिए तू उतरकर मेरे पास आ गया? अखिलभुवनेश्वर! यदि मैं न होता तो फिर तू किससे प्रेम करता?

तूने मुझे इस समस्त वैभव में अपना साझी बना लिया है। मेरे हृदय में तेरे आनन्द की अनन्त क्रीड़ा हो रही है, मेरे जीवन में तेरी इच्छा सदैव नये-नये रूप धारण करती रहती है।

और इसी लिए तो हे राजराजेश्वर, तूने मेरे हृदय को मोहित करने के लिए अपने को सौन्दर्य्य से अलंकृत कर रक्खा है; इसी लिए तो तेरा प्रेम तेरे प्रेमी के प्रेम में लीन हो जाता है और यहीं पर दोनों के सम्पूर्ण मिलन में तो तेरा दर्शन प्राप्त होता है!

५७

प्रकाश, मेरे प्रकाश, भुवन को भरनेवाले प्रकाश; अहा, मेरे हृदय को मधुर बनानेवाले प्रकाश !

आह, मेरे प्यारे, मेरे जीवन के केन्द्र पर वही प्रकाश नृत्य कर रहा है और वही प्रकाश मेरे प्रेम की वीणा भी झंकृत कर रहा है। उसी से आकाश खुल जाता है, वायु उन्मत्त होकर प्रवाहित होने लगती है और समस्त भूमण्डल पर एक अट्टहास-सा व्याप्त हो जाता है !

प्रकाश के ही सागर में तितलियाँ अपने पाल फैला कर उड़ती हैं और प्रकाश-तरङ्गों ही के शिखर पर मालती और मल्लिका हिलोरें लेने लगती हैं।

मेरे प्यारे, प्रकाश ही तो प्रत्येक मेघ-खण्ड पर पड़कर स्वर्ण-रूप में विकीर्ण हो जाता है और असंख्य रत्न बिखेर देता है !

प्यारे, उसी से तो पत्ते-पत्ते पर अपरिमित आनन्द और उल्लास फैल जाता है ! देखते नहीं, आकाशगंगा ने अपने कूलों को डुबा दिया है और आनन्द की बाढ़ आ गई है !!

५८

उस आनन्द की सारी तानें मेरे अन्तिम गायन में लीन हो जायँ, जिसके वशीभूत होकर पृथ्वी में से लहलहाती घास का मानों सिन्धु उमड़कर लहराने लगता है; जो जीवन और मरण नामक दोनों यमज सहोदरों को इस विशाल जगत् में नचाता रहता है; जो आँधी के साथ आकर समस्त प्राणियों को झकझोरता और जगाता रहता है; जो पीड़ा के प्रस्फुटित रक्त कमल के ऊपर प्रशान्त भाव से साश्रु होकर बैठता है और जो अपने सर्वस्व को तृणवत् धूल में फेंककर भी मुँह से एक शब्द नहीं निकालता !

५९

हाँ हृदयेश्वर ! मैं जानती हूँ कि यह पत्तियों पर नाचती हुई स्वर्णमयी आभा, आकाश में सञ्चरण करनेवाले यह अलस-गामी मेघ और मेरे मस्तक को शीतलता प्रदान करते हुए प्रवाहित होनेवाला यह समीर, तेरे प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

प्रभातकालीन प्रकाश ने मेरे नेत्रों को आप्लावित कर दिया—मेरे हृदय के लिए यही तो तेरा सन्देश है ! तू अपना सिर नीचा किये और मेरे नेत्रों में अपने नेत्र गड़ाये मेरी ओर निहार रहा है और मेरा हृदय तेरे चरणारविन्दों में संलग्न है !!

६०

जगती के पारावार के तटों पर यह बच्चों का मेला हो रहा है ! ऊपर तो अनन्त आकाश-मण्डल प्रशान्त रूप से छाया हुआ है और नीचे सुनील सागर की फेनिल जल-राशि अत्यन्त चञ्चल और क्षुब्ध हो रही है। जगती के पारावार के तटों पर यह कोलाहल-पूर्वक नाचते-कूदते हुए बच्चों का मेला हो रहा है !

वे बालू के घर बनाते हैं तथा कौड़ी, सीपी और शङ्ख एकत्रित करके उनसे खेलते हैं। सूखे पत्तों की नाव बना-बनाकर हँसते हुए वे उन्हें सागर के विपुल नील सलिल में बहा देते हैं। जगती के पारावार के तटों पर यह बच्चों का खेल हो रहा है !

वे न तैरना जानते हैं और न जाल फेंकना ! पनडुब्बे डुबकियाँ लगा-लगाकर मोती निकाल रहे हैं, वणिक् अपनी-अपनी नौकाओं पर चले जा रहे हैं; परन्तु बच्चे तो बस वीचियों पर कङ्कड़ एकत्रित कर-करके उन्हें पुनः बिखेर रहे हैं। न तो उन्हें गुप्त रत्नागारों की खोज है और न वे जाल ही डालना जानते हैं।

समुद्र मानों अट्टहास-पूर्वक उमड़ा सा आ रहा है और वेला का पीत वर्ण ऐसा बोध होता है, मानों वह अस्फुट

६० क

हास्य-ध्वनि कर रहा हो। भीषण लहरें उन बच्चों के कानों में अपनी तरल तानों द्वारा निरर्थक गाथाएँ रच-रचकर वैसे ही सुना रही हैं जैसे माता पालने में सोये हुए शिशु को झुलाती हुई लोरियाँ गाती है। सागर शिशुओं के साथ खेल रहा है और सागर-वेला मुसका रही है।

जगती के पारावार के तटों पर यह बच्चों का मेला हो रहा है। झंझा वात वायुमण्डल के समस्त मार्गहीन प्रदेशों में घूमता फिर रहा है, कहीं जल-राशि के सुदूरस्थ प्रान्तों में नौका जलमग्न हो रही है और यमदूत यत्र-तत्र मँडरा रहे हैं; परन्तु बच्चों का खेल होता ही जाता है। जगती के पारावार के तटों पर यह बच्चों का विशाल मेला हो रहा है!

६१

क्या कोई जानता है कि शिशु के नेत्र-युगलों पर रह-रह-कर मचलनेवाली यह सुमधुरा निद्रा कहाँ से आती है ?

हाँ, सुनते तो हैं कि परियों के गाँव में एक घने वन के बीच, जुगनुओं के मन्द प्रकाश में दो लजीली जादू की कलियाँ लटक रही हैं, जिनमें इस निद्रा का निवास है। वहीं से तो यह शिशु की पलकें चूमने को आती हैं !

क्या कोई जानता है कि सोते समय शिशु के ओष्ठ-पुटों पर प्रस्फुटित होनेवाली इस मधुमयी मुसकान की जन्मस्थली कहाँ है ?

हाँ, सुनते तो हैं कि बाल-शशि की एक तरुण पीत रश्मि ने किसी विलीयमान शरत्-मेघ के छोर का स्पर्श कर दिया था। वहीं इस मुसकान का पहले-पहल जन्म हुआ था, जो सोते समय शिशु के ओष्ठ-पुटों पर प्रस्फुटित होती है !

क्या कोई जानता है कि शिशु के अङ्ग-प्रत्यङ्गों से विकसित होनेवाली यह सुमधुर एवं कलित कोमलता अब तक कहाँ छिपी हुई थी ?

हाँ, शिशु की माता जब एक तरुण-वयस्का किशोरी थी, उस समय प्रेम के सुकोमल और मूक रहस्यों के रूप में यह सुमधुर एवं कलित कोमलता उसके हृदय के कोने-कोने में व्याप्त हो रही थी जो आज शिशु के अङ्ग-प्रत्यङ्गों से विकसित हो रही है !

६२

प्यारे बच्चे ! जब मैं तेरे लिए विविध रङ्गों के खिलौने लाता हूँ, तभी तो मुझे इस बात का रहस्य ज्ञात होता है कि आकाश के मेघों और जलराशियों पर इतने रङ्ग क्यों क्रीड़ा किया करते हैं और सुमनावलि क्यों रङ्ग-रञ्जित बनाई गई है—हाँ, जब मैं तुझे रङ्गीन खिलौने देता हूँ; तब !

जब मैं प्रेमपूर्वक तुझे नचाने के लिए गाता हूँ तब मुझे इसका तथ्य ज्ञात होता है कि वृक्षों की पत्तियों की मर्मराहट क्यों इतनी सङ्गीतमय है और क्यों सागर की तुमुल लहरें सतत अपनी तरल-तान पृथ्वी को सुनाया करती हैं—हाँ, जब मैं तुझे गा-गाकर नचाता हूँ; तब !

जब मैं तेरे लोलुप करों में मिठाई लाकर देता हूँ तब मुझे अनुभव होता है कि प्रसून-पात्रों में यह मधु क्यों भरा रहता है और क्यों फलों में सुमधुर रस प्रच्छन्न रूप से सन्निहित रहता है—हाँ, जब मैं तेरे लोलुप करों में मिठाई देता हूँ; तब !

प्यारे ! जब मैं तुझे हँसाने के हेतु तेरा मुख चूमता हूँ उस समय मुझे सुनिश्चित रूप से ज्ञात हो जाता है कि आकाश से प्रस्फुटित होनेवाले प्रात:कालीन प्रकाश में कौन सा आनन्द है और कौन सा सुख वसन्त वायु मेरे शरीर को प्रदान करता है—हाँ, जब मैं तुझे हँसाने के हेतु तेरा मुख चूमता हूँ; तब !

६३

बन्धु ! तूने न जाने कितने अपरिचितों से मुझे परिचित कराया, दूसरों के अनेक घरों में मुझे स्थान दिलाया, दूरस्थ जनों को निकट लाकर उनसे मेरी घनिष्ठता कराई और परायों के साथ बन्धुता स्थापित करा दी।

अपना प्राचीन आवास छोड़ते समय मेरा चित्त शङ्काकुल रहता है कि अब न जाने क्या होगा। उस समय मैं यह सर्वथा भूल जाता हूँ कि वहाँ नवीनता के बीच पुरातनता का समावेश है और वहाँ भी तू ही विराजमान है !

जीवन और मरण के द्वारा, बन्धु ! तू मुझे लोक अथवा परलोक में, जहाँ भी पथ-प्रदर्शन-पूर्वक ले जाता है, वहाँ तू ही, एक मात्र तू ही तो निरन्तर मेरे अनन्त जीवन का संगी रहता है और सदा मेरे हृदय को आनन्दमय बन्धनों द्वारा अपरिचितों से योजित करता रहता है !

बस, एक तुझे जान लेने के उपरान्त कोई भी अनात्मीय नहीं रह जाता और न उसके लिए किसी का भी द्वार बन्द रह सकता है। बन्धु ! मेरी यह प्रार्थना स्वीकृत कर लो कि अगणित प्राणियों की इस क्रीड़ा में मैं तेरे सम्पर्क के आनन्द से कभी वञ्चित न हूँ !

६४

काश के वन में, शून्य नदी के किनारे मैंने उससे पूछा, "सुभगे! दीपक को अञ्चल के नीचे छिपाये इस निर्जन पथ से तुम कहाँ जा रही हो? मेरा घर सर्वथा अँधेरा और निर्जन पड़ा हुआ है। कृपया मुझे ही अपना आलोक प्रदान करो!"

गोधूलि-वेला के उस क्षीण प्रकाश में उसने अपने कजरारे नेत्रों से क्षणेक मेरे मुख की ओर देखकर कहा—"प्रतीची में सूर्य्यालोक अन्तर्हित हो जाने के उपरान्त अपने इस दीपक को प्रवाह में विसर्जित करने के लिए ही मैं नदी-तट पर आई हूँ।"

लम्बे-लम्बे काशों के बीच मैं अकेला खड़ा देखता रहा कि उसके दीपक का सलज्ज क्षीण आलोक नदी के प्रवाह में व्यर्थ ही बहा चला जा रहा है!

सन्ध्या के घनीभूत होते हुए नीरव अन्धकार में मैंने उससे पूछा—"सुभगे! तुम्हारे समस्त दीप प्रज्वलित हो चुके हैं—अब तुम यह दीपक कहाँ लिये जा रही हो? मेरा घर सर्वथा अँधेरा और निर्जन पड़ा हुआ है,—कृपया मुझे ही अपना आलोक प्रदान करो।" अपनी कजरारी आँखों से मेरी ओर देखती हुई वह एक क्षण के लिए संदिग्ध भाव से खड़ी रही और फिर अन्त में बोली, "मैं अपना यह दीपक

६४ क

आकाश को अर्पित करने के लिए लाई हूँ।" मैं खड़ा-खड़ा देखता रहा कि उसका वह प्रदीप शून्याकाश में व्यर्थ ही जला जा रहा है!

अर्धरात्रि के निश्चंद्र आकाश में मैंने उससे पूछा, "सुभगे! अब इस दीपक को अपने हृदय के समीप छिपाये तुम किस खोज में चलीं? मेरा घर सर्वथा अँधेरा और निर्जन पड़ा हुआ है। कृपया मुझे ही अपना आलोक प्रदान करो!" उसने मुहूर्त्त भर उस अंधकार में मेरी ओर देखा और फिर कुछ सोच कर कहा, "मैं इसे प्रदीपोत्सव में अर्पित करने के हेतु लाई हूँ।" मैं खड़ा देखता ही रह गया कि वह छोटा-सा प्रदीप असंख्यक दीपराशियों में व्यर्थ ही विलुप्त हो गया!

६५

मेरे देवता ! मेरे जीवन के छलकते हुए इस पात्र में से तुम कौन सा अमृत पान करना चाहते हो ?

मेरे कवि ! क्या तेरी यह साध है कि मेरे नेत्रों द्वारा तू अपनी ही सृष्टि की छवि देखे और मेरे मुग्ध श्रवणों के द्वार पर निःशब्द खड़ा रहकर अपना ही अनन्त गायन सुना करे ?

तेरा विश्व मेरे मन में विचित्र शब्दों की सृष्टि कर रहा है और तेरा हर्ष उनमें सङ्गीत का पुट मिलाता जा रहा है। प्रेमावेश में तू अपने को मुझे प्रदान करके फिर अपना ही समस्त माधुर्य मुझमें अनुभव करता है !

६६

जो गोधूलि-कालीन प्रकाश अथवा छाया में सदा मेरे जीवन के अन्तरात्मा की अधिवासिनी रही है एवं जिसने कभी भी प्रभातकाल अपना घूँघट नहीं हटाया है, हे देवता, उसे ही मैं अपने अन्तिम गायन के साथ अन्तिम उपहार-स्वरूप तुझे अर्पित करूँगा।

शब्दों द्वारा उससे प्रणय-याचना की गई थी; परन्तु निष्फल रही और प्रबोधनों ने भी अपने उत्सुक कर उसकी ओर व्यर्थ ही बढ़ाये।

उसकी छवि अपने हृदय म धारण किये मैं देश-विदेश में भटक चुका हूँ और मेरे जीवन के अनेक उत्थान और पतन उसी के चारों ओर घटित हुए हैं।

मेरे समस्त भावों और कार्यों पर, मेरी निद्रा और स्वप्नों पर वह शासन करती रही है; परन्तु सदा मुझसे पृथक् और अकेली ही रहती आई है।

न जाने कितनों ने मेरा द्वार खटखटाकर उससे मिलने की याचना की; परन्तु सब निराश लौट गये हैं।

संसार में कोई भी तो ऐसा नहीं था, जिसने उसे प्रत्यक्ष देखा हो और वह निरन्तर अपने एकान्तवास में तुझसे अङ्गीकृत होने की ही प्रतीक्षा में रही है।

६७

आकाश और नीड़ दोनों तू ही तो है !

नयनाभिराम, यहाँ घोंसले के भीतर यह तेरा ही प्रेम तो आत्मा को विविध रङ्गों, विभिन्न गन्धों एवं अनेक गायनों से परिवेष्टित रखता है !

दाहिने हाथ की सुनहली डाली में माधुर्य की माला लिये हुए यहाँ उषा दबे पाँव धरती को अलंकृत करने आती है।

सुनसान और धेनुशून्य चारण-भूमि पर से होती हुई सन्ध्या चिह्न-हीन पथों को पार करती अपने सुवर्ण-कलश में पश्चिम के विश्रान्तिसागर का शान्ति-नीर भरे हुए यहाँ आती है।

परन्तु जहाँ आत्मा के निर्बाध रूप से विचरण करने के लिए अनन्ताकाश फैला हुआ है, वहाँ अमन्द एवं अत्यन्त शुभ्र प्रकाश का साम्राज्य है। न वहाँ दिन है, न रात; न रूप है, न रङ्ग और कभी-कभी तो वहाँ एक शब्द तक नहीं होता !

६८

हमारी इस धरती पर तेरे रविकर भुजाएँ फैलाये आते हैं और जीवन-व्यापी दिन भर हमारे द्वार पर इस प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं कि हमारे अश्रुओं, आहों और गायनों से निर्मित मेघों को तेरे चरणों में ले जायँ।

धुँधले मेघों से बने उस उत्तरीय को तू अपने नक्षत्र-मण्डित वक्षस्थल से प्रेम-पूर्ण हर्ष-सहित लपेट लेता है और फिर उन मेघों को चित्र-विचित्र आकारों में परिवर्तित करके उन्हें निरन्तर बदलते रहनेवाले रङ्गों से रञ्जित कर देता है।

शान्तस्वरूप निरंजन! मेघ-निर्मित उस उत्तरीय के इतना हल्का, चपल, सुकोमल, वाष्पाकुल एवं श्यामल होने के कारण ही तो तू उससे इतना प्रेम करता है और सम्भव है कि इसी कारण वह तेरे आतङ्क-पूर्ण समुज्ज्वल प्रकाश को अपनी दयामय छाया से ढक ले!

६९

जीवन की जो तरङ्ग मेरी शिराओं में अहर्निश प्रवाहित हुआ करती है, वही तो इस विश्व में भी बहती हुई किसी ताल पर नाच सी रही है।

यह वही तो जीवन है जो इस वसुधा की मृत्तिका के प्रत्येक रोमकूप में से असंख्य तृणों के रूप में सोल्लास प्रस्फुटित होकर पत्तियों और पुष्पों के मानों एक समुद्र में परिणत हो लहलहा उठता है।

यह वही तो जीवन है जो जन्म और मरण के समुद्ररूपी पालने में अन्तहीन ज्वार-भाटा द्वारा आन्दोलित होता हुआ परिलक्षित होता है।

मुझे कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है कि मेरे शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग इस सजीव विश्व के सम्पर्क में आकर अत्यन्त महान् बन गये हैं। यही नहीं, मुझे इसका भी गर्व अनुभूत हो रहा है कि युग-युगान्तरों का वह विराट् सजीव स्पन्दन आज, इस क्षण भी, हमारी नाड़ियों में प्रवाहित होनेवाले रक्त में नर्त्तित हो रहा है।

७०

क्या इस लय के आनन्द से आनन्दित होना, इस भयावह हर्ष के भँवर में हिलोरें लेना और मग्न होकर उसमें मग्न हो जाना तेरी सामर्थ्य के बाहर है ?

संसार के प्रत्येक पदार्थ अत्यन्त वेग के साथ आगे भागे जा रहे हैं;—वे न तो रुकते हैं और न पीछे ही मुड़कर देखते हैं ! ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है जो उनके मार्ग का अवरोधन कर सके। वे निरन्तर भयानक वेग से आगे ही बढ़े जा रहे हैं।

उस अविश्रान्त और द्रुततर सङ्गीत की गति पर ऋतुएँ नाचती हुई आती हैं और चली जाती हैं—राग, रङ्ग और आमोद अनन्त निर्झरों के रूप में उस हर्षातिरेक में निपतित होते हैं जो बिखरकर, आत्मविसर्जन-पूर्वक प्रतिक्षण विलीयमान होता रहता है।

७१

यह तेरी माया का ही तो प्रभाव है कि मैं अपने को अत्यंत बड़प्पन दिये हुए मिथ्या गर्व के कारण चारों ओर ऐंठा फिरता हूँ और तेरे दिव्य आलोक को अपनी रंगीन छाया से रञ्जित करता रहता हूँ।

पहिले तो तू स्वयं अपने आपको विभाजित कर डालता है और फिर उन विभक्त आत्मांशों को असंख्य स्वरों से पुकारता है। तेरे इसी आत्म-विभाजन ने तो मुझमें शरीर धारण किया है।

तेरा यह हृदय-वेधी विरहगान बहु-रंजित आँसुओं और मुसकानों तथा आशाओं और आशङ्काओं के रूप में समस्त गगन-मंडल में प्रतिध्वनित होता है; तरंगें उठ-उठकर पुनः विलीन हो जाती हैं; एवं स्वप्नों की सृष्टि होकर वे पुनः भग्न हो जाते हैं। मुझमें तेरा ही तो पराभव होता है!

७१ क

विश्व की यह यवनिका, जो तूने डाल रखी है, वह दिवस एवं रात्रि की तूलिका द्वारा अगणित चित्रों से चित्रित है। उसके पृष्ठ देश में स्थापित तेरा आसन समस्त निरर्थक सद्रेखाओं से रहित और आश्चर्यजनक रहस्यपूर्ण अऋजु रेखाओं से ही निर्मित है।

तेरे और मेरे उस महान् प्रदर्शन से ही तो समस्त गगन-मंडल पूरित हो रहा है, तेरी और मेरी स्वर-लहरी के गुञ्जन से ही समस्त वायुमंडल प्रतिध्वनित है तथा तेरी और मेरी आँखमिचौनी में ही तो युगयुगान्तर व्यतीत हुए जा रहे हैं!

७२

वही, मेरा अंतरात्मा ही तो मेरी चेतना को अपने गंभीर एवं प्रच्छन्न स्पर्श से उद्बुद्ध करता है।

वही इन नेत्रों को भी अभिमंत्रण द्वारा प्रभावित करके मेरी हृद्वीणा को सुख एवं दुःख के आरोहावरोह के साथ उल्लास-पूर्वक झंकृत करता है।

वही तो विश्व की इस माया के जाल को स्वर्ण, रजत, नील एवं हरित रङ्गों की क्षणिक आभा से ग्रथित करके उसके भीतर से अपने पाद-पद्मों की एक झाँकी दिखा देता है, जिनका स्पर्श मेरे लिए आत्म-विमुग्धकारी है।

कितने दिन आते हैं और युग व्यतीत हो जाते हैं, परन्तु बस वही सदैव नाना नाम, रूप, हर्षातिरेक एवं शोको-च्छ्वास द्वारा मेरे हृदय को स्पंदित रखता है।

७३

त्याग-मूलक मुक्ति मुझे वांछनीय नहीं है ! मुझे तो सहस्रों सुखमय बंधनों में ही मोक्ष की अनुभूति होती है ।

तू तो सदैव ही अपनी विभिन्न वर्णगंधमयी सद्यसुधा ढालकर वसुंधरा के इस मृण्मय पात्र को मेरे लिए लबालब भरता रहता है ।

मेरा संसार अपने शतशः प्रदीपों को तेरी दिव्य ज्योति से प्रज्वलित करके उन्हें तेरे मन्दिर की वेदी पर अर्पित करेगा ।

अपने इन्द्रिय-द्वारों का योगासनों द्वारा अवरोध करूँ ! नहीं, यह मुझसे न होगा ! मैं तो बस दर्शन, श्रवण एवं स्पर्श के सुख से ही तेरा परमानन्द प्राप्त करूँगा !

हाँ, मेरे समस्त संशय आनन्द के प्रखर आलोक में जल उठेंगे एवं मेरी समस्त कामनाएँ प्रेमफलों में परिणत हो जायँगी ।

७४

दिवस का अवसान होकर पृथ्वी पर अंधकार आविर्भूत हो रहा है। अब नदी पर झारी भरने जाने का मेरा समय हो गया।

उदासी से भरे हुए जल के कलकल स्वर से सांध्य समीर में एक आकुलता सी आ गई है। आह, वह तो मुझे गोधूलि के समय बाहर आने के हेतु आह्वान कर रही है। विजन-पथ पर इस समय कोई भी नहीं चल रहा है, वायु के वेग में उग्रता-सी आ रही है और नदी के जल में लहरें उथल-पुथल-सी मचाये हुए हैं।

मुझे न तो यह ज्ञात है कि पुनः घर लौटूँगी भी अथवा नहीं और न मैं यही जानती हूँ कि आज मेरा किस-किससे परिचय होगा। मैं तो बस इतना ही जानती हूँ कि उस घाट पर अपनी छोटी सी नौका में बैठा हुआ वह अज्ञात प्राणी अपनी बीन बजा रहा है!

७५

तूने जो कुछ भी हम मर्त्यलोकवासियों को दे रक्खा है, वह हमारी समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करके पुनः तेरे पास ज्यों का त्यों लौट जाता है।

नदी को अपना दैनिक कृत्य करना रहता है और वह सदैव खेतों और ग्रामों में होती हुई वेग-पूर्वक बहा करती है; परन्तु फिर भी उसकी अन्तहीन धारा तेरे चरणकमलों को ही जलाञ्जलि प्रदान करने के हेतु मुड़-मुड़ जाती है।

पुष्प अपने सौरभ से वायु को सुवासित किया करता है; परन्तु उसकी अन्तिम सेवा यही तो है कि वह अपने को तेरे निमित्त अर्पित कर दे!

तेरी पूजा करने से संसार कुछ निर्धन नहीं हो जाता!

मनुष्य अपनी रुचि के अनुरूप कवि की युक्तियों का अर्थ लगाया करते हैं; परन्तु उनके अन्तिम अर्थ का लक्ष्य तेरी ही ओर तो होता है!!

७६

जीवितेश ! दिन अनुदिन क्या मैं तेरे सम्मुख खड़ा रहूँ ? अखिलेश्वर ! क्या मैं तेरी आराधना में करबद्ध होकर तेरे सम्मुख खड़ा रहूँ ?

तेरे इस कार्य-निरत संसार में जहाँ परिश्रम और झंझटों के कारण निरन्तर कोलाहल मचा हुआ है, क्या मैं व्यस्तता-पूर्वक पलायित होते हुए जनसमूह के बीच तेरे सम्मुख खड़ा रहूँ ?

और, जब इस संसार में मेरा कार्य समाप्त हो जाय, हे राजराजेश्वर ! तब भी क्या मैं अकेला और मौन ही तेरे सम्मुख खड़ा रहूँ ?

७७

तुझे मैं देवता जानकर तुझसे दूर हटकर खड़ा रहता हूँ—अपना ही जान तेरे और अधिक समीप नहीं पहुँचता ! तुझे अपना पिता मानकर सदैव मैं तेरे चरणों में नत-मस्तक रहा करता हूँ; परन्तु सखा समझकर तेरा हाथ नहीं पकड़ लेता !

जहाँ अपने आसन से उतरकर तू नीचे आता है और अपने आप को सर्वथा मेरा ही स्वीकार करता है, वहाँ पहुँच और तुझे अपने हृदय से लगाकर मैं तेरे साथ बन्धुता नहीं स्थापित कर लेता !

इस संसार में जितने भी मेरे भाई हैं, वे सब तेरे ही तो प्रतिरूप हैं; परन्तु फिर भी मैं उनकी उपेक्षा करता हुआ अपनी अर्जित सम्पत्ति का उन्हें भागी नहीं बनाता और इस प्रकार अपना सर्वस्व मैं तुझे अर्पित नहीं कर पाता !

सुख और दुःख में मैं मानवों का साथ देकर तेरा साथी नहीं बन जाता ! भय के कारण जीवन का उत्सर्ग न करके मैं जीवन के अगाध सागर में निमग्न होने से रह जाता हूँ !!

७८

जब सृष्टि सर्वथा सद्य-निर्मित थी और नक्षत्र-माला अपने प्रारम्भिक नव्यालोक से नीलगगन में जगमगा रही थी, उस समय आकाश में समस्त देवगण एकत्रित होकर हर्ष-पूर्वक गान करने लगे, "अहा, यह कैसी सर्वाङ्गसुन्दर छवि है ! कैसा विशुद्ध आनन्द है !"

अकस्मात् एक बोल उठा, "अरे, यह तो ऐसा प्रतीत होता है कि सामने की आलोक-माला कहीं पर खण्डित हो गई है और कोई एक नक्षत्र खो गया है।"

उनकी वीणा का स्वर्णाभ तार सहसा टूट गया, उनके गायन का क्रम रुक गया और वे शोकार्त्त होकर कहने लगे, "हाँ-हाँ; वह खोया हुआ नक्षत्र ही तो सर्वोत्तम था और वह ही समस्त आकाश का आभूषण था !"

उस दिन से आज तक उसकी खोज अनवरत रूप से हो रही है और सब एक दूसरे से निरंतर यही कहते हैं कि उस तारे के खो जाने से विश्व का एकमात्र आनन्द खो गया है !

रात्रि की गम्भीर निस्तब्धता में हो आकाश के नक्षत्रगण आपस में हँसते हुए एक दूसरे से अस्फुट शब्दों में कहते हैं, "सर्वत्र ही तो अखण्ड पूर्णता विद्यमान है !!"

७९

यदि इस जीवन में तेरा दर्शन प्राप्त होना मेरे प्रारब्ध में नहीं लिखा है तो प्रभु, इतना तो कर ही दो कि इस दुर्भाग्य की अनुभूति मेरे हृदय में सदैव बनी रहे कि मैं तेरे दर्शन से वञ्चित रह गया—मैं क्षणमात्र के लिए भी इसे न भुला सकूँ और इसका शोक और पछतावा मुझे सोते-जागते, हर घड़ी खटकता रहे !

संसार के इस जनपूर्ण विनिमय-क्षेत्र में ज्यों-ज्यों मेरे जीवन के दिवस व्यतीत होते जायँ और दैनिक लाभ-धन से मेरी मुट्ठी भरे, त्यों-त्यों प्रभु, मेरे हृदय में निरंतर यही अनुभूति होती रहे कि अभी मुझे कुछ भी तो लाभ नहीं हुआ—मैं क्षणमात्र के लिए भी इसे न भुला सकूँ और इसका शोक और पछतावा मुझे सोते-जागते, हरघड़ी खटकता रहे !

जब मैं मार्ग के एक ओर हाँफता हुआ बैठ जाऊँ और अपना बिछौना नीचे पृथ्वी पर बिछाकर प्रस्तुत करूँ तब, प्रभु, मेरे हृदय में निरन्तर यही अनुभूति बनी रहे कि अभी तो मेरे सामने सारी की सारी यात्रा शेष पड़ी हुई है—मैं क्षणमात्र के लिए भी इसे न भुला सकूँ और इसका शोक और पछतावा मुझे सोते-जागते, हरघड़ी खटकता रहे !

७९ क

जब मेरा आवास सजकर प्रस्तुत हो जाय, वंशियाँ बजने लगें और हँसने की तुमुल ध्वनि गुञ्जायमान हो तब भी, प्रभु, मेरे हृदय में निरन्तर यही अनुभूति बनी रहे कि मैंने तुझे अपने यहाँ आमंत्रित नहीं किया—मैं क्षणमात्र के लिए भी इसे न भुला सकूँ और इसका शोक और पछतावा मुझे सोते-जागते, हर घड़ी खटकता रहे !

८०

सदा प्रकाशवान् भगवान् भास्कर ! मैं शरत्कालीन मेघ के एक अवशिष्ट खण्ड के समान हूँ जो आकाश में अकारण ही इधर से उधर मारा-मारा फिरता है। तेरे उष्ण-स्पर्श ने अभी मेरी वाष्प-जन्य तरलता लुप्त करके मुझे तेरे प्रकाश के समरूप नहीं बना पाया है; अत: अब भी मैं अपने जीवन के मास और वत्सर तुझसे बिलग रहते हुए ही उन्हें गिन-गिनकर व्यतीत कर रहा हूँ !

यदि तेरी यही इच्छा है—तेरा यही खेल है तो ले; मेरी इस पलायमान, क्षणभंगुर शून्यता को तू ले ले; उसे विविध रङ्गों से रञ्जित कर डाल, अपने स्वर्ण से प्रतिभासित कर दे और स्वेच्छाचारी वायु के स्रोत में उसे प्रवाहित करके अनेकानेक विचित्र रूपों में उसे यत्र-तत्र प्रसरित होने दे।

और फिर जब घोर रात्रि के समय इस क्रीड़ा को बन्द करने की ही तेरी इच्छा होगी तब मैं अन्धकार में मिलकर विलीन हो जाऊँगा अथवा शुभ्र प्रभात की उष:कालीन मुस्कान में—समुज्ज्वल पवित्रता की सुशीतल वेला में विलीन हो जाने के लिए प्रस्तुत रहूँगा।

८१

मैंने कितने ही सावकाश दिन अपना समय नष्ट हो जाने का दुःखमय परिताप किया है; परन्तु नाथ, समय भी क्या कभी नष्ट होता है? तूने तो मेरे जीवन के प्रत्येक क्षण को अपने करगत रख छोड़ा है!

अन्तर्यामी देव, तू तो प्रत्येक वस्तु के गर्भ में गुप्त रूप से प्रच्छन्न रहकर बीजों को अंकुरों में, कलियों को पुष्पों में और पुष्पों को फलों के रूप में उत्पन्न करता रहता है।

मैं रात्रि में परिश्रान्त भाव से अपनी अलस शय्या पर निद्रातुर पड़ा-पड़ा सोच रहा था कि इस समय तो संसार के सारे कार्य बन्द पड़े होंगे; परन्तु जब मैं प्रभात में सोकर उठा तो देखता क्या हूँ कि मेरा पुष्पोद्यान अलौकिक पुष्पों से भरा पड़ा है!

८२

स्वामी, तेरे पास तो अनन्त समय है। तेरे क्षणों को भला कौन गिन सकता है !

दिवस और रात्रियाँ आती और फिर चली जाती हैं, युगयुगान्तर पुष्पों के समान कुसुमित होकर पुनः कुम्हला जाते हैं; परन्तु तेरे यहाँ जल्दी का क्या काम और कैसा विलम्ब ? तू प्रतीक्षा करना ख़ूब जानता है !

एक अकिञ्चन-से वन्य-पुष्प को पूर्णता प्रदान करने में ही तुझे न जाने कितनी शताब्दियाँ लग जाती हैं।

परन्तु हमारे पास व्यर्थ नष्ट करने को समय कहाँ ? इस समयाभाव के कारण ही तो हम छोटे से छोटे अवसर का उपयोग करने के हेतु आपस में झगड़ते हैं। हम तो इतने निर्धन हैं कि हमें क्षण मात्र का भी विलम्ब करने का साहस नहीं !

इसी कारण तो हम प्रत्येक झगड़ालू व्यक्ति के साथ वितण्डावाद करने में अपना सारा समय खो देते हैं और फल-स्वरूप तेरी वेदी अन्त तक उपहारों से रिक्त पड़ी रह जाती है !

दिवावसान होने पर मैं आशंका-पूर्ण व्यग्रता से भाग कर आता हूँ कि कहीं तेरे मन्दिर के कपाट न बन्द हो जायँ; परन्तु फिर भी पाता यह हूँ कि अब भी समय शेष है !

८३

मैं अपने शोकाश्रुबिन्दुओं से तेरे लिए एक मौक्तिक कण्ठहार बनाऊँगा, माँ !

आकाश के नक्षत्रों ने तो केवल तेरे चरणों को ही आभूषित करने के हेतु आलोक-निर्मित अलङ्कार प्रदान किये हैं; परन्तु, मेरा यह हार ? यह तो स्वयं तेरे वक्षस्थल पर आलम्बित होगा !

धन और यश प्रदान करनेवाली तू ही तो है और इनका देना न देना तेरे ही हाथ की बात है; परन्तु मेरा यह शोक भी सर्वथा मेरी ही निजी सम्पत्ति है और जब मैं उसे उपहार-स्वरूप तुझे अर्पित करता हूँ तो मुझे तू अपने प्रसाद से पुरस्कृत भी करती है !

८४

तेरे वियोग की पीड़ा ही तो समस्त विश्व में व्याप्त होकर गगनमण्डल पर असंख्य आकारों को अङ्कित कर रही है!

वियोगजनित शोक से ही तो आकाश की नक्षत्र-माला अनिमेष नेत्रों से निस्तब्धता-पूर्वक एक दूसरे की ओर देखती है और वही शोक श्रावण मास की अन्धकारमयी वर्षा-पूर्ण रात्रि में शब्दायमान पत्तियों के बीच काव्य-सङ्गीत ध्वनित करता है।

यह बहुव्यापिनी वेदना ही तो घनीभूत होकर मानवी गृहों में प्रेम और कामना तथा शोक और आनन्द में परिणत हो जाती है और वही सदैव द्रवीभूत होकर गीतों के रूप में मेरे कवि-हृदय से निःसृत होती है।

८५

वीरों का दल जब पहले-पहल अपने प्रभु के गृह से निकला था, उस समय उन्होंने कहाँ बन्द कर रक्खा था अपना विपुल बल-पौरुष और कहाँ था उनका कवच और उनके शस्त्रास्त्र ?

उस समय तो वे अत्यन्त दीन और असहाय-से दिखाई दे रहे थे और अपने प्रभु के गृह से निकलते ही उन पर बाणों की झड़ी-सी लग गई थी !

और, जिस दिन लौटकर वे पुन: अपने प्रभु के गृह में आये, उस दिन भी उन्होंने अपना वह पराक्रम कहाँ छिपा दिया था ?

जिस दिन वे लौटकर पुनः अपने प्रभु के गृह आये, उस दिन फेंक दी थी उन्होंने अपनी असि और परित्याग कर दिया था अपना धनुष और बाण; उनके मुखमण्डल पर विराजमान थी उस दिन एक शान्ति और वे अपने जीवन के फल पीछे छोड़ आये थे !

८६

तेरा मृत्युदूत आज मेरे द्वार पर खड़ा है। उस अज्ञात सागर को पार करके वह मेरे पास तेरा ही तो आह्वान लाया है!

रात्रि तमसाच्छन्न और मेरा हृदय भय-प्रकम्पित है—फिर भी मैं हाथ में दीपक लेकर द्वार खोलूँगा और वन्दना-पूर्वक उसका स्वागत करूँगा। कारण कि यह जो द्वार पर खड़ा है, वह तेरा ही तो दूत है!

मैं साश्रु करबद्ध होकर उसका सत्कार करूँगा। मैं उसके चरणों पर अपनी हृदय-निधि अर्पित करके उसका पूजन करूँगा!

वह अपना कार्य सम्पादित कर चुकने पर मेरे अगले प्रभात को तमसावृत करके पुन: लौट जायगा और तब, मेरे इस सूने घर में, मेरी यह निर्जीव काया ही तेरे लिए मेरी अन्तिम भेंट-स्वरूप पड़ी मिलेगी!!

८७

अत्यन्त ही क्षीण आशा के साथ जाकर मैं उसे अपने घर के कोने-कोने में ढूँढ़ता हूँ; परन्तु वह कभी भी खोजे नहीं मिलती !

मेरा घर यद्यपि बहुत ही छोटा है; परन्तु उसमें से जो भी एक बार चला गया, वह फिर प्राप्त नहीं होता।

परन्तु तेरा भवन तो अत्यन्त ही विशाल और अनन्त है, नाथ ! उसे खोजता-खोजता ही मैं तेरे द्वार पर आ पहुँचा हूँ।

तेरे सान्ध्य आकाश के सुनहरे चँदोवे के नीचे खड़ा होकर मैं आकांक्षा-पूर्ण नेत्रों से तेरी ओर निहारता हूँ।

मैं अब अनन्त्यता के उस तट पर आ गया हूँ जहाँ से किसी भी वस्तु का लोप होना असम्भव है—न किसी आशा का, न किसी सुख का और न अश्रु जाल के बीच से देखी गई किसी मुखाकृति का ही !

स्वामिन् ! मेरे इस निस्सार जीवन को उस सागर में निमग्न कर दो न—उसे उस अगाध परिपूर्णता में डाल न दो ! मुझे कम से कम एक बेर तो इस विश्व की समग्रता में विलुप्त उस मधुस्पर्श की अनुभूति कर लेने दो !

८८

भग्न मन्दिर के देवता ! मेरी वीणा के टूटे तारों से तेरा यश-गान अब नहीं निःसृत होता ! अब सांध्य घंटा-ध्वनि द्वारा तेरे आराधना-काल का भी उद्घोष नहीं होता। अब तो तेरे समीप का वायुमण्डल तक सर्वथा नीरव और शान्त है !

तेरे इस निर्जन आवास में चंचल वसन्त-वायु अवश्य आ जाया करती है; परन्तु वह भी तो उन्हीं पुष्पों का संवाद लाती है जो अब तेरी सेवा में अर्पित नहीं किये जाते।

तेरे प्रसाद से अब तक भी वंचित तेरा वह प्राचीन पुजारी अपनी अतृप्त अभिलाषाओं को हृदय में लिये भटका करता है। संध्या समय जब प्रकाश और अन्धकार का गोधूलि-वेला के साथ सम्मिलन होता है, तब वह क्षुधित और परिश्रान्त होकर पुनः उसी भग्न मन्दिर को लौट आता है।

भग्न मन्दिर के देवता ! अब कितने ही पुण्य-पर्व चुपचाप आते हैं और लौट जाते हैं; कितनी ही उपासना की रात्रियाँ व्यतीत हो जाती हैं और तेरे यहाँ एक दीपक तक नहीं जलता !

कुशल मूर्तिकारों द्वारा अनेक नवीन मूर्तियाँ निर्मित की जाकर पुनः समय आने पर विस्मृति के पुनीत स्रोत में प्रवाहित कर दी जाती हैं।

केवल मेरा भग्न मन्दिर का देवता ही घोरतर अवहेलनापूर्वक पूजोपचार से वंचित रह जाता है !

८९

अब मुझे कोई भी जोर से पुकारते न सुनेगा—मेरे मालिक की यही इच्छा है। अब से तो मैं केवल अस्फुट शब्दों का ही प्रयोग करूँगा। मेरे हृदय की बात तो अब केवल गीतों की गुनगुनाहट द्वारा ही व्यक्त हुआ करेगी।

लोग शीघ्रतापूर्वक राजा की हाट की ओर चले जा रहे हैं। सभी क्रय-विक्रय करनेवाले वहाँ एकत्रित हैं; परन्तु मुझे ठीक मध्याह्न काल की कुवेला में कार्य-संभार के बीच छुट्टी मिलती है।

तो फिर फूलों को मेरी वाटिका में कुसमय ही खिलने दो और मध्याह्न-कालीन मधुमक्खियों को अपनी अलस गुञ्जार प्रारम्भ करने दो।

मैंने अपना न जाने कितना समय भलाई और बुराई के झगड़ों में नष्ट किया है; परन्तु मेरे विश्राम-काल के सखा की अब यही इच्छा है कि वह मेरा हृदय अपनी ओर आकृष्ट कर ले। मैं तो यह भी नहीं जानता कि क्यों और किस निरर्थक अभिप्राय से मुझे सहसा यह आह्वान मिला है!

९०

जिस दिन मृत्यु तेरा द्वार खटखटायेगी तब तू उसे क्या उपहार देगा ?

आह ! तब मैं अपने अतिथि के सम्मुख अपने जीवन का परिपूर्ण पात्र उपस्थित कर दूँगा—मैं उसे कदापि खाली हाथ न लौटाऊँगा।

जब अन्त समय मृत्यु मेरा द्वार खटखटायेगी तब मैं अपने जीवन भर के समस्त हेमन्त-दिवसों एवं वसन्त-रात्रियों के फूल-फल और अपने कार्य-व्यस्त जीवन की समस्त उपार्जित एवं सङ्कलित सम्पत्ति उसके सामने लाकर रक्खूँगा !

९१

मृत्यु, मेरी मृत्यु, मेरे जीवन की अन्तिम सार्थकता! तू आ और मुझसे रहस्यालाप कर!

न जाने कब से मैं तेरी प्रतीक्षा में बैठी हूँ और बस, एक तेरे ही लिए मैंने जीवन का समस्त सुख-दुःख सहन किया है। मेरा सारा अस्तित्व, मेरी सारी सम्पत्ति, मेरी समस्त आशाएँ और मेरा अशेष प्रेम सब अत्यन्त गुप्त रूप से निरन्तर तेरी ही ओर प्रवाहित होता रहा है। यदि तू केवल एक बेर, बस एक बेर, मेरी ओर अपना अन्तिम शुभ दृष्टिपात कर दे तो मेरा जीवन सदा के लिए तेरा अनुगत हो जाय!

पुष्पों की वरमाला प्रस्तुत कर ली गई है। विवाहोपरान्त वधू अपना गृह परित्याग कर रजनी की निर्जनता में अपने स्वामी से अकेले मिलेगी।

९२

मैं जानता हूँ कि वह भी एक दिन आयेगा जब मेरी यह पार्थिव दृष्टि नष्ट हो जायगी और जीवन चुपचाप बिदा लेकर और मेरे नेत्रों पर अन्तिम पर्दा डालकर प्रस्थान कर देगा !

फिर भी तो तारागण रात भर सजग रहेंगे, पूर्ववत् ही प्रभात होगा और घड़ियाँ समुद्र की तरङ्गों की भाँति उमड़-उमड़कर सुख-दुःख का प्रादुर्भाव करती रहेंगी !

जब मैं अपने उस अन्तिम क्षण पर विचार करता हूँ तो काल का व्यवधान टूट जाता है और मैं मृत्यु के प्रकाश की सहायता से तेरे उस लोक को और उसकी यों ही पड़ी हुई निधियों को स्पष्टतया देख पाता हूँ। वहाँ का निम्नातिनिम्न आसन और हीनातिहीन जीवन भी यहाँ के लिए सर्वथा दुर्लभ है !

वे वस्तुएँ जिन्हें मैं वाञ्छा करके भी प्राप्त न कर सका तथा वे जो मुझे प्राप्त हो गईं, उन सभी को जाने दो ! अब तो मुझे केवल उन वस्तुओं पर ही सच्चा स्वत्व प्राप्त करने दो जिनका मैं अवहेलना-पूर्वक सदा से तिरस्कार करता आया हूँ !

९३

मुझे अब अवकाश प्राप्त हो गया है। बन्धुओ, मुझे अब बिदा दो! मैं तुम सबको प्रणाम करके प्रयाण करता हूँ!

मेरे द्वार की कुञ्जियाँ यह लो—मैं अपने घर के समस्त अधिकारों का परित्याग करता हूँ! मैं तो इस समय तुम्हारे अन्तिम प्रसाद-वचनों मात्र की याचना करता हूँ।

हम बहुत दिन तक पड़ोसी रहे हैं; परन्तु मैंने तुम्हें कुछ देने की अपेक्षा तुमसे पाया ही अधिक है। अब प्रभात हो रहा है और मेरी कुटी के तिमिराच्छन्न कोने को उद्भासित करनेवाला दीपक निर्वाण को प्राप्त हो चुका है। मेरे लिए बुलाहट आ गई है और मैं अपनी महायात्रा के लिए प्रस्तुत हूँ!!

९४

मेरी इस बिदा के समय, मित्रो, तुम सब मेरे लिए शुभ-कामना प्रकट करो ! क्षितिज पर उष:कालीन लालिमा झलक रही है और मेरा पथ अत्यन्त ललाम है।

मुझसे यह न पूछो कि वहाँ ले जाने के हेतु मेरे पास क्या है। मैं तो छूछे हाथ और आशापूर्ण हृदय लेकर ही यात्रा पर प्रस्थान कर रहा हूँ।

मैं माला और मिलन-वेश ही धारण करूँगा। अन्य पथिकों की भाँति मेरा परिधान गैरिक नहीं है। यद्यपि मार्ग आशंकाकुलित है, परन्तु मैं सर्वथा निःशङ्क हूँ !

जब मेरी यात्रा समाप्त होगी उस समय सान्ध्य तारा उदित हो जायगा और राजद्वार के नौबतख़ाने से सन्ध्या-काल की करुण रागिनी बज उठेगी !

९५

मुझे उस महान् क्षण का ज्ञान तक नहीं है, जब मैंने इस जीवन के सिंहद्वार में, इस आश्चर्य संसार के महानिकेतन में, पहले-पहल पदार्पण किया !

किस अज्ञात शक्ति ने इस विपुल रहस्य के क्रोड़ में—इस विशाल भूलभुलैये में—मुझे अर्धरात्रि के समय मुकुलित होनेवाली कलिका के समान लाकर विकसित कर दिया ?

दूसरे दिन प्रातःकाल जब मेरे नेत्रों ने प्रकाश का प्रथम दर्शन किया, तब मुझे कुछ ऐसा भासित हुआ मानों मैं इस संसार में नवागन्तुक नहीं हूँ तथा वह अनाम और अरूप अज्ञेय ही मेरी जननी के रूप में मुझे अपने उत्सङ्ग में लिये हुए है !

इसी प्रकार मृत्यु के समय भी वही अज्ञात शक्ति मुझे चिरपरिचित की ही भाँति भासित होगी। और, मुझे इस जीवन से प्रेम है, इसलिए मैं जानता हूँ कि मैं मृत्यु को भी प्यार ही करूँगा।

जब माता शिशु के मुख को दाहिने स्तन से हटाती है तो वह रोने लगता है; परन्तु दूसरे ही क्षण तो उसे बाएँ स्तन की प्राप्ति में आश्वासन मिल जाता है !!

९६

जब मैं यहाँ से प्रस्थान करूँ उस समय मेरे अन्तिम शब्द यही हों, "जो कुछ भी मैंने यहाँ देखा है, वह सर्वथा अप्रतिम है।

"प्रकाश के सागर में प्रस्फुटित होनेवाले इस विश्वरूपी कमल के गर्भ में प्रच्छन्न मधु का आस्वादन करके मैं धन्य हो गया हूँ"—मेरी अभिलाषा है कि यही मेरे अन्तिम शब्द हों!

"इस अनन्त रूपात्मक क्रीड़ास्थल में मैं अपना खेल खेल चुका हूँ और यहीं मुझे उस अरूप का दर्शन-लाभ हुआ है।

"मेरा सारा शरीर और मेरा अङ्ग-प्रत्यङ्ग उस अस्पर्श्य का पावन स्पर्श पाकर पुलक-पूरित हो गया है और यदि यहीं, इसी क्षण, मेरा अन्त है तो हो; अवश्य हो—मैं उसका सहर्ष स्वागत करता हूँ"—मेरी अभिलाषा है कि यही मेरे अन्तिम शब्द हों!

९७

जब मैं तेरे साथ क्रीड़ा किया करता था, तब मैंने यह कभी भी तो न पूछा कि तू है कौन। तब मुझे न संकोच था और न भय और मेरा जीवन अत्यंत ही शान्ति-रहित और उद्यमी था।

मेरे निकटतम सखा की भाँति तुम नित्य-प्रति प्रात:काल मुझे सोते से जगाकर ले जाते थे और अपने साथ विभिन्न वन-प्रान्तरों में घुमाते फिरते थे।

उन दिनों जो गीत मुझे गाकर सुनाया करते थे, उनका अर्थ समझने की मैंने कभी चेष्टा न की। हाँ, बस एक मेरी वाणी अवश्य तुम्हारे स्वर में स्वर मिलाकर गा उठती और मेरा हृदय उनके ताल पर नाचने लगता!

परन्तु क्रीड़ा-काल समाप्त हो जाने पर अब मैं सहसा यह क्या दृश्य देख रहा हूँ? निखिल भुवन समस्त नक्षत्र-मण्डल सहित तेरे पाद-पद्मों में अपनी दृष्टि झुकाये हुए श्रद्धायुक्त संभ्रम के साथ खड़ा हुआ है!!

९८

विजय-चिह्नों तथा अपनी हार के हारों से मैं तुझे आभूषित करूँगा। बिना पराजित हुए बच जाना तो सर्वथा मेरी शक्ति से परे है!

मैं निश्चय जानता हूँ कि मेरा गर्व अवश्य ध्वंस हो जायगा, पीड़ा की पराकाष्ठा से मेरा जीवन अपने बंधन तोड़ डालेगा, मेरे शून्य हृदय से वंशी की भाँति करुण-क्रन्दन सिसकता हुआ फूट निकलेगा और पाषाण भी द्रवित होकर रो पड़ेंगे।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि कमल के शतदल सदैव अ-मुकुलित न पड़े रहेंगे और न उसके गर्भ का मधु-कोष ही निरंतर छिपा रह सकेगा।

नील नभ-मण्डल से किसी के नेत्र मेरी ओर देखकर चुपचाप मुझे बुलाने का संकेत करेंगे।

फिर मेरे लिए कुछ भी—किञ्चिन्मात्र भी—शेष न रह जायगा और तेरे चरण-कमलों के समीप मुझे मृत्यु—महामृत्यु की उपलब्धि होगी!

९९

जब मैं अपनी इस जीवन-नौका का पतवार परित्याग करता हूँ, तो मुझे यह पूर्णतया विदित रहता है कि अब उसका तेरे हाथों सँभाले जाने का समय आ गया है। जो कार्य होने को हैं, वह तो उसी क्षण स्वत: ही हो जायँगे; फिर मैं यह व्यर्थ का प्रयास क्यों करूँ ?

अस्तु, मेरे हृदय, तू अपना हाथ खींच ले और शान्ति-पूर्वक अपनी पराजय को सहन कर। तुझे जिस स्थिति में भी रहना पड़े, वहीं पूर्ण शांति के साथ बैठना तू अपना सौभाग्य समझ।

मेरे यह क्षुद्र प्रदीप वायु के प्रत्येक साधारण आघात से बुझ जाते हैं और उन्हीं को प्रज्वलित करने की चेष्टा में मैं बारम्बार अन्य सब बातें भूल जाता हूँ।

परन्तु अबकी बेर मैं बुद्धिमानी से काम लूँगा और अंधकार में ही पृथ्वी पर चटाई डालकर बैठा हुआ प्रतीक्षा करूँगा। फिर नाथ, जब भी तेरी मौज हो, तू चुपचाप आना और मेरे समीप बैठ जाना !

१००

निरङ्कार का परिपूर्ण एवं सर्वाङ्गसुन्दर मुक्ता प्राप्त करने की अभिलाषा से ही तो मैं साकार के सागर में डुबकी लगाता हूँ !

अब मैं अपनी इस जर्जर नौका में बैठकर घाट-घाट भटकना नहीं चाहता। अब वे दिन नहीं रहे जब मैं तरङ्गों पर इधर-उधर थपेड़े खाते फिरना भी एक क्रीड़ा समझता था !

अब तो मैं मरकर अमर होने का ही अभिलाषी हूँ !

अथाह सागर के तट पर स्थित तेरे उस सभा-भवन में, जहाँ बेसुरी तन्त्रियों का सङ्गीत उमड़ा करता है, मैं अपनी यह जीवन-वीणा लेकर जाऊँगा !

मैं उसे नित्यता के स्वरों से मिलाकर बजाऊँगा और जब उसकी वेदनामयी अन्तिम ध्वनि शान्त होगी तब मैं अपनी मूकवीणा को उस शान्तमूर्ति के चरणों में डाल दूँगा !!

१०१

अपने गीतों के द्वारा मैंने यावज्जीवन तेरी खोज की है। उन्होंने ही मुझे द्वार-द्वार घुमाया है और उन्हीं की सहायता से संसार में खोजते और टटोलते हुए मुझे आत्म-विषयक ज्ञान प्राप्त हुआ है।

जो कुछ भी शिक्षा मैं प्राप्त कर सका हूँ, वह मैंने इन गीतों से ही पाई है; उन्होंने ही मुझे गुप्त पथों का निर्देश किया है और उन्हीं ने मेरे हृदयाकाश पर असंख्य नक्षत्रों को उदित करके उन्हें मेरी दृष्टि के सम्मुख उपस्थित किया है।

उन्होंने ही मुझे निरन्तर सुख-दुःख जगत् के रहस्यों को समझाने में मेरा पथ-प्रदर्शन किया है और अन्त में मेरी यात्रा की समाप्ति पर सन्ध्या समय उन्होंने मुझे न जाने किस राजप्रासाद के द्वार पर ला खड़ा किया है!

१०२

मैं जनसाधारण के बीच गर्व-पूर्वक कहा करता था कि मैं तुझसे परिचित हूँ। उन्हें मेरी सभी कृतियों में तेरे स्वरूप का आभास मिलता है। वे आ-आकर मुझसे पूछते हैं, "भाई, यह है कौन ?" परन्तु मेरी तो समझ में ही नहीं आता कि मैं कहूँ भी तो क्या कहूँ! उनको मैं यही उत्तर देता हूँ, "सच पूछो तो मैं कुछ भी नहीं बता सकता !" मेरा उत्तर सुनकर मुझ पर दोषारोपण करते हुए वे मेरा तिरस्कार करके चले जाते हैं और तू; तू बैठा हँसा करता है।

मैं तेरी गाथाओं को अमर गीतों के रूप में व्यक्त करता हूँ और तेरे रहस्य मेरे हृदय से उमड़े से पड़ते हैं। लोग आ-आकर पूछते हैं, "इन गीतों का तात्पर्य तो बताओ" परन्तु मेरी समझ में ही नहीं आता कि उन्हें उत्तर भी दूँ तो क्या दूँ। मैं केवल यही कहता हूँ, "अरे भाई, इनका अर्थ भला कौन जानता है !" वे तिरस्कार-पूर्वक हँसकर चले जाते हैं और तू; तू तो बैठा हँसा ही करता है !

१०३

प्रभु, ऐसा वर दो कि मेरी समस्त इन्द्रियाँ प्रसरित होकर तेरे चरण-कमलों में स्थित विश्व का स्पश मेरी एकमात्र प्रणति द्वारा कर सकें !

भगवन्, ऐसा वर दो कि मेरा मन श्रावण मास के जल-भारावनत मेघों के समान मेरी एकमात्र प्रणति में तेरे द्वार पर झुक जाय !

मेरे देवता, ऐसा वर दो कि मेरे गायनों की समस्त ध्वनियाँ संकुलित होकर एकस्रोत हो जायँ और उस शांति-सागर की ओर मेरी एकमात्र प्रणति द्वारा प्रवाहित हो जायँ !

मेरे ईश्वर, ऐसा वर दो कि अहर्निश उड़ते हुए पार्वत्य देश-स्थित निज नीड़ों की ओर जानेवाले गृहाकुल सारसों की पंक्ति की भाँति मेरा जीवन भी अपने शाश्वत निकेत की ओर मेरी एकमात्र प्रणति द्वारा ही उड़ चले !!!